साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
साहित्य यात्रा

प्रिय महोदय,
'साहित्य यात्रा' के

साहित्य यात्रा विशिष्ट सदस्यता	:	₹ 1100/-
एक वर्ष (4अंक)	:	₹ 300 /- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	₹ 750 /- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	₹ 1100 /-
आजीवन सदस्यता	:	$ 11000 /-
विदेश के लिए (3 वर्ष)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रुपये अतिरिक्त जोड़ दें)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम : .....
पता : .....
.....
.....
.....
फोन : .....

यहाँ से काटिए

चेक/ड्राफ्ट संपादक / प्रसार व्यवस्थापक, **साहित्य यात्रा,** पटना के नाम पर ही बनाएँ और निम्नलिखित पते पर हमें भेजने की कृपा करें :-
आप निम्न खाता विवरण पर ऑन लाइन भी पैसा जमा करा सकते हैं। पैसा जमाकर इसकी सूचना साहित्य यात्रा को अवश्य दें।
बैंक विवरण : पंजाब नेशनल बैंक, ए.एन. कॉलेज, पटना
खाता संख्या : 623000100016263, IFSC Code : PUNB0623600

संपादक
साहित्य यात्रा
ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001 (बिहार)
फोन : 09835063713/08750483224
ई-मेल : shahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com
पत्रिका आप साहित्य यात्रा के पते पर मनीऑर्डर भेज कर भी मंगा सकते हैं।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-3 अंक-13 अक्टुबर-दिसम्बर, 2017

परामर्शी

डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ० संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो० (डॉ०) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ० सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ० रवीन्द्र पाठक

संपादक

प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

शुल्क दर :	एक वर्ष (4 अंक)	300
	तीन वर्ष (12 अंक)	750
	(डाक खर्च सहित)	
	संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	1100
	आजीवन सदस्यता	11,000
	विदेश के लिए	60 डॉलर (3 वर्ष)

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07
डॉ. कलानाथ मिश्र

आपके पत्र 09

संस्मरण/स्फुट

लेखक का सम्मान 11
नरेन्द्र कोहली

आलेख

लोक साहित्य में स्वतंत्रता संघर्ष 16
डॉ. पूरनचंद टंडन

वर्तमान सन्दर्भ में कबीर की प्रासंगिकता 25
प्रो. (डॉ.) छाया सिन्हा

परिभाषिक शब्दावली निर्माण की अवधारणा 30
प्रो. (डॉ.) रामस्वरूप भगत

अपने लोग : व्यंग्यार्थ से प्रतिध्वनि बहुसन्दर्भित यथार्थ 34
गीता शुक्ला

हिन्दी मीडिया : परिवर्तन एवं परिदृश्य का पुनरावलोकन 39
राम प्रकाश द्विवेदी

आलोचना का निकष 'दस्तावेज' पत्रिका के संपादकीय 47
डॉ. चौनसिंह मीना

सॉनेट और त्रिलोचन 53
डॉ. विद्या सागर सिंह

मृगतृष्णा 59
डॉ. रीतामणि वैश्य

कहानी

रूपांतरण 68
डॉ. दीप्ति गुप्ता

साक्षात्कार

बात-चीत 75
गोवर्धन यादव

आलेख

शिव प्रसाद सिंह की कहानियों की आंचलिकता 85
जयवर्धन 'शिशिर'

कविता

एकांत का शोर 88
शंभू कांत सिन्हा

नदियों का नहाना किसी ने देखा है 89
शंभू कांत सिन्हा

दस्तावेज

राष्ट्रभाषा की समस्याएँ 90
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

रिपोर्ट

दिल्ली विश्वविद्यालय के खॉलसा कॉलेज में आयोजित नवागत समारोह में साहित्य यात्रा पर चर्चा 95
डॉ. अमरेन्द्र पाण्डेय

सम्पादकीय

साहित्यिक पर्यटन की परम्परा,

संचार के आधुनिक उपकरणों ने निश्चय ही रचनाकारों के लिए एक नया और उर्वर मंच प्रदान किया है। रचनाकार अपनी छोटी-मोटी रचना, अपनी उपलब्धियाँ, प्रकाशित पुस्तक, आलेख सभी इस मंच पर साझा करते हैं। निश्चय ही यह एक उत्साहवर्द्धक तथा साकारात्मक स्थिति है। साहित्यकार, रचनाकार इस मंच के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़े भी रहते हैं तथा एक साकारात्मक संवाद की स्थिति भी बनी है।

किंतु इसका एक दूसरा पक्ष भी है। यह कि रचना की गुणवत्ता को परखने के लिए इस माध्यम के पास ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है। लेखक, कवि, कथाकार, समीक्षक अधिक से अधिक रचना फेसबुक, व्हाटस्अप, ब्लॉग आदि पर देना चाहते हैं। संख्या की दृष्टि से रचनात्मकता बढी है। रोज नई नई रचना देखने का अवसर मिलता है। किन्तु इस स्पर्द्धा में कहीं न कहीं रचना की गुणवत्ता प्रभावित होता है। यह अलग बात है कि काल की कसौटी पर वही रचना टिक पाता है जो गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है। वर्ष 2017का अंत हुआ। इस पूरे वर्ष में अनेक रचना प्रकाश में आए। इसकी गुणवत्ता की परख तो आनेवाला समय ही करेगा। हाँ इस मंच पर भी साहित्य के कई समूह सक्रिय हैं। विभिन्न प्रकार के बड़े-छोटे पुरस्कारों की घोषणा और आदान-प्रदान भी संचार के इस डिजिटल दुनिया की शोभा बढ़ाते हैं। कुछ तो शुद्ध साहित्यकार, रचनाकार हैं। जो अपनी पहचान बनाने में सक्रिय हैं या कहें संघर्ष कर रहे हैं। कुछ होते हैं साहित्यिक एक्टिविस्ट। इसकी सक्रियता और तत्परता कई स्तरों पर बनी रहती है। साहित्य का माहौल इनकी सक्रियता से जीवन्त रहता है।

विगत कुछ वर्षों से यात्रा-साहित्य या हम कहें साहित्यिक पर्यटन की भी एक परम्परा चल पड़ी है। यह भी एक सकारात्मक कदम है। विभिन्न संगोष्ठियों, परिसंवादों, सम्मेलनों का आयोजन कई संस्थाएं देश के विभिन्न हिस्सों में या फिर विदेशों में भी आयोजित करते हैं। सृजन गाथा डॉट काम का नाम इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस संस्था की ओर से कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का सफल आयोजनों का श्रेय डॉ जयप्रकाश मानस को है। विगत उन्नीस वर्षों से यह संस्था विभिन्न स्थलों पर 14 से ऊपर सम्मेलनों का सफल आयोजन किया है। यह एक बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी। अब कई अन्य संस्थाएँ भी इस तरह का साहित्यिक संगोष्ठी और पर्यटन का आयोजन सफलता पूर्वक कर रहे हैं। एक सिलसिला चल पड़ा है। डॉ. आशीष कांधवे भी विश्व हिन्दी परिषद की ओर से साहित्यिक पर्यटन का आयोजन कर रहे हैं। इसके अनेक लाभ हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों के साहित्यकार एक मंच पर एकत्रित होते हैं। घुलते-मिलते हैं, विचारों का आदान-प्रदान होता है। साहित्यिक चर्चाएं भी होती हैं। एक दूसरे की रचनात्मकता और उपलब्धियों से हम रू-ब-रू हो पाते हैं। पर्यटन का लाभ सीधा साहित्यिक सृजन में होता है। साहित्यकारों में

यायावरी का होना अच्छी बात है।

इस प्रकार वर्ष 2017 साहित्यिक दृष्टि से मिला जुला वर्ष रहा। कुछ घटना दिल को टीस पहुँचा गई। इस वर्ष हिंदी साहित्य ने कुवंर नारायण और चंद्रकांत देवताले जैसे महत्वपूर्ण कवियों को खोया है। वहीं दूसरी तरफ कला और संस्कृति की बात करें तो अभी हाल में ही ठुमरी की प्रसिद्ध गायिका श्रीमती गिरिजा देवी का निधन हुआ, यह भारतीय संगीत के लिए अपूरणीय क्षति है। पुरस्कारों के क्षेत्र में देखें तो इस वर्ष का साहित्य अकादमी पुरस्कार श्री रमेश कुंतल मेघ जी को दिया गया और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार कृष्णा सोबती जी को मिला।

राजनीतिक दृष्टि से भी यह उथल पुथल का वर्ष रहा है, घात-प्रतिघात का वर्ष रहा है। अभी हाल ही में संपन्न हुए चुनाओं के दौरान जटिल दाँव-पेंच और कूट नीतियाँ अपने चरम पर देखी गईं। शब्दों की मर्यादा तार-तार हुई। अमर्यादित भाषा का जमकर प्रयोग हुआ। इससे एक बार फिर साहित्य के समक्ष यह चुनौती मुखर रूप में सामने आई है कि ऐसी विपरीत परिस्थिति में साहित्य क्या अपनी गरिमा और निष्ठा को बचा पायेगा? प्रेमचंद ने लिखा था कि साहित्य को मशाल की तरह आगे चलना चाहिए, उसे राजनीति का पिछलग्गू नहीं होना चाहिए। पुरस्कार वापसी की घटना ने इस वर्ष इस सवाल पर जैसे प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया हो और हमें यह पुनर्विचार करने के बाध्य कर दिया कि आखिर साहित्यिक विरादरी कहाँ खड़ी है? वह राजनीति की पिछलग्गू है या मनुष्यता की गरिमा और उसकी स्वायत्तता के पक्ष में है? यह सवाल वर्ष 2017 में इसलिए भी और मौजूं हो गया क्योंकि यह मुक्तिबोध का शताब्दी वर्ष भी रहा है। इस वर्ष मुक्तिबोध कई तरह से याद किये गए, बड़े-बड़े झंडे पताखे लगे, कार्यक्रम हुए, बड़े-बड़े मंचों से भाषण दिए गए (काश इसका शतांश भी मुक्तिबोध के जिन्दा रहते किया गया होता तो शायद वे कुछ और जी जाते, वे अपना छपा हुआ एक संग्रह तक नहीं देख पाए थे) और इस वर्ष अचानक ऐसा लगा कि मुक्तिबोध इतने जरूरी कैसे हो गए? ये वही मुक्तिबोध हैं जिनका समूचा साहित्य प्रतिपक्ष का साहित्य है, जन पक्षधरता का साहित्य है और स्वयं साहित्यकारों के लिए आत्ममंथन का भी साहित्य है कि आखिर क्या वे उसी जुलूस में शामिल होना चाहते हैं जिसमें डोमा जी उस्ताद शामिल है या उसके प्रतिपक्ष में खड़े होना चाहते हैं? यह वास्तव में गहन पुनर्विचार का वर्ष रहा है और आने वाले वर्ष 2018 के लिए इस वर्ष ने बड़े ही महत्वपूर्ण सवाल पैदा किये हैं जिनका उत्तर साहित्य और साहित्यकारों को तलाशना होगा। अगर साहित्य को बचाए-बनाए रखना है, तो उसकी धार पैनी करनी होगी। राजनीतिक महत्वाकांक्षा साहित्य के धार को कुंद कर देती है। छोटीमोटी घेराबंदियों से उपर उठकर हमें समाज सापेक्ष होना होगा। आम जन के प्रति अधिक जागरूक होकर उनके हित में सोचना होगा।

इस अंक में नरेन्द्र कोहली

वर्ष 2018 की शुभकामनाओं सहित!

कलानाथ मिश्र

आपके पत्र

जीवन के विविधांगों का एक साथ सजीव चित्रण सिर्फ साहित्य के द्वारा ही संभव प्रतीत होता है। इस पत्रिका का शीर्षक भी साहित्य के इसी मर्म को चरितार्थ करता है। इसमें एक ओर भाषा तो दूसरी ओर मीडिया व अन्य साहित्यिक लेखों का समायोजन पत्रिका के ओहदा को अन्यतम श्रेणी में ला खड़ा करता है। यह पत्रिका केवल साहित्य की यात्रा नहीं अपितु उसके माधयम से जीवन की यात्रा मालूम पड़ती है। संपादक महोदय को उनके गुणवत्तापूर्ण कार्यकुशलता व पत्रिका के प्रगमन के लिए शुभकामनाएं।

सुमित कुमार, शोधार्थी
77, जुबिली हॉल, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

आदरणीय संपादक महोदय,

'साहित्य यात्र' का जुलाई -सितंबर 2017 अंक पढ़कर मजबुरन कहना पड़ता है कि यह अंक अद्वितीय एवं अनुपम है और व्यक्तिगत लाईब्रेरी का हिस्सा हो गया है । कारण, यह अंक 'वर्तमान भाषाई परिदृश्य और राष्ट्रीयता' विषय पर कई शोधपरक आलेख सामग्री को अपने कलेवर में समाहित किए हुए है। इसमें प्रकाशित एक-एक आलेख अपने समकालीन भाषाई परिदृश्य एवं उसके अनेक आयामों की उधेड़बुन सफलता पूर्वक किये हुए हैं। सर्वप्रथम संपादकीय 'मिट्टी पानी की भाषा' ने ही इस तरह से विषय प्रवेश कराया कि पूरा अंक एक रौ में बढ़ता चला गया। इसी क्रम में यह अंक हिंदी भाषा में अन्तर्निहित संभावनाओं पर भी उचित प्रकाश डाला है । डॉ. रमेश बर्णवाल जी का आलेख समाचार पत्रों में प्रयोग होने वाली हिंदी के रूप पर विचारोत्तेजक लेख है। इसके अलावा डॉ. सारिका कालरा जी का लेख महत्वपूर्ण लगा। 'दस्तावेज' के अंतर्गत धर्मबीर भारती का लेख वर्तमान परिदृश्य में काफी मूल्यवान ठहरता है। इसके साथ ही डॉ. सत्यप्रिय पांडेय जी के द्वारा रिपोर्ट पढ़ कर ज्ञात हुआ कि रामदरश मिश्र जी के जन्मदिन कार्यक्रम को बड़े सादगी से मनाया गया। पत्रिका ऐसी ही मूल्यपरक लेख को हम पाठकों के बीच ले कर आती रहे, इसी आशा के साथ आपको अनंत शुभकामनाएँ ।

आबिद हुसैन
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007
मो. 9873297595

विगत कई वर्षों के बाद अनुजवत सत्य प्रिय से मुलाकात हुई। उनके द्वारा साहित्य यात्रा पत्रिका के दो अंक उपहार स्वरूप मिला। आवरण देखकर तुरंत ही पृष्ठ पलटने से स्वयं को नही रोक पाया। उच्च कोटि की साहित्यिक स्तर एवं समकालीन विमर्श ने सभी आलेखों को पढ़ने की व्याकुलता बढ़ा दी। वर्षों बाद अपने आप को साहित्यिक बयार के सानिध्य पाकर मन प्रफ्फुलित हो उठा। मैं अनुजवत सत्य प्रिय का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पुनः साहित्यिक विमर्श के आसपास खींचा। मैं हृदय से उनके इस प्रयास की सराहना करते हुए उनके उज्ज्वल साहित्यिक भविष्य की कामना करता हूँ और साधुवाद देता हूँ। संपादक महोदय को कोटिशः धन्यवाद जिन्होंने खाँटी साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया है। पुनः साधुवाद!

शिवेन्द्र कुमार झा

रचनाकारों से अनुरोध

- प्रेषित रचनाएँ मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
- रचनाएँ ए-4 आकार के पेज पर टंकीत होना चाहिए।
- रचना क्रुतिदेव 010 फॉन्ट में ही भेजें।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय तथा अपना एक पासपोर्ट आकार का फोटो भी भेजें।
- रचनाएँ किसी भी स्थिति में लौटाना संभव नहीं है। अतः रचनाकार रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।
- रचनाएँ sahityayatra@gmail.com पर ही भेजें।
- ई-मेल भेजने के क्रम में विषय अवश्य लिखें।

लेखक का सम्मान

नरेन्द्र कोहली

शनिवार आया और मैंने न केवल उनकी प्रतीक्षा आरंभ की, वरन् उनके साक्षात्कार के लिए सामान लाने के संदर्भ में बाजार के चार चक्कर भी काटे। और फिर मैं बैठ गया पूरी तरह से प्रतीक्षा करने। मुझे प्रतीक्षा का रोग है। उसके साथ मैं और कोई काम नहीं कर सकता। किंतु उनका आने का तो कोई समय ही नहीं था।

एक फोन आया था। उन्होंने बताया कि वे विधि मंत्रालय से बोल रहे हैं और मंत्री जी के निजी सचिव हैं। विधि मंत्री मोयली जी नरेन्द्र कोहली के घर आना चाहते हैं। क्या नरेन्द्र कोहली उनको शनिवार का कोई समय दे सकते हैं। मैं रिसीवर पकड़े-पकड़े ही स्तब्ध हो गया। कहना चाहिए कि अहल्या के समान पत्थर हो गया। आज तक तो कभी ऐसा हुआ नहीं था कि किसी मंत्री ने, और वह भी केन्द्र सरकार के मंत्री ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की हो। उन्होंने अपने कार्यालय में मुझे नहीं बुलाया था। वे स्वयं मेरे घर आना चाहते थे। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जब सांसद थे तो एक बार मेरे घर आए थे। राज्यपाल बनने के बाद तो उनके लिए भी यह संभव नहीं हुआ। और आज एक मंत्री कह रहे हैं कि वे मेरे घर आएंगे और उसके लिए मेरी अनुमति मांग रहे हैं। सचमुच अब तो इस देश में भी लेखक का सम्मान कुछ बढ़ गया है। समाज और देश में कोई स्थान बन गया है। किंतु वे क्यों मिलना चाहते हैं मुझे? कैसे पूछूं। कोई भला आदमी मिलना चाहता है तो मिल ले न। उन्हें मुझ से क्या काम होगा। यदि मैं भी मिलने की इच्छा प्रकट करने वाले से नाम पूछने लगा तो मुझ में और एक सरकारी दफ्तर में अंतर ही क्या रह जाएगा। आ जाएं। मैंने अपनी उत्तेजना में कह दिया और उधर से फोन काट दिया गया।

तब मेरा ध्यान इस ओर गया कि मैंने समय तो पूछा ही नहीं था। उधर से भी कोई समय नहीं दिया गया था। तो ? सारा दिन प्रतीक्षा करूं कि वे किस समय आएंगे। विचित्र बौड़म हूं मैं। मैं तो बौड़म हूं ही, इसी बात से होश उड़ गए कि एक मंत्री मेरे घर आ रहे हैं। अब? मेरे पास उनका फोन नंबर भी नहीं था कि मैं फोन कर पूछ लेता। विधि मंत्रालय का कोई नंबर खोज भी लिया तो जाने वे किस नंबर पर मिलते हैं। मंत्रालय में कोई एक फोन तो होता नहीं। सैकड़ों फोन होते हैं और हर मेज पर चार फोन होते हैं। वैसे भी संकोची आदमी हूं। देखा जाएगा। शनिवार तो आ ले। नहीं जाऊंगा कहीं। वैसे भी मुझे कहां जाना होता है।

शनिवार आया और मैंने न केवल उनकी प्रतीक्षा आरंभ की, वरन् उनके सत्कार के लिए सामान लाने के संदर्भ में बाजार के चार चक्कर भी काटे। और फिर मैं बैठ गया पूरी तरह से प्रतीक्षा करने। मुझे प्रतीक्षा का रोग है। उसके साथ मैं और कोई काम नहीं कर सकता। किंतु उनका आने का तो कोई समय ही नहीं था। वे प्रात: नौ बजे से रात के नौ बजे तक कभी भी आ सकते थे। और मैं था कि दिन भर और कुछ कर ही नहीं सकता था, क्योंकि मुझे प्रतीक्षा करनी थी। फोन की घंटी बजती थी, तो मैं लपक कर उठाता था कि विधि मंत्रालय से फोन होगा। किंतु वे स्वास्थ्य बीमा करने वालों से लेकर जूते बेचने वालों तक के फोन थे किंतु विधि मंत्रालय से फोन नहीं आया। द्वार की घंटी बजती तो मैं झपट कर कपाट खोलता किंतु वहां दूध वाला, समाचारपत्र वाला, ड्राइवर, सब्जी वाला, फल वाला, माली .... सब आएय किंतु मंत्री महोदय नहीं आए। शनिवार और रविवार ऐसे ही बीत गए। मेरा मन विधि मंत्रालय से बाहर निकल आया था। किसी ने परिहास किया होगा। किसी को नहीं आना था। कोई मंत्री किसी साहित्यकार से मिलने नहीं आता। क्या लेना है उसे साहित्यकार से।

सोमवार को फिर एक फोन आया। यह विधि मंत्रालय से ही था और वे ही सज्जन बोल रहे थे, जिन्होंने पहले फोन किया था। दि मिनिस्टर विल लाइक टू कॉल ऑन यू ऑन टडूजडे।

मैं जैसे आपे में नहीं था। बोला, पहले अपने मंत्री से बात कर समय और दिन पक्का कर लीजिए, फिर फोन कीजिए। मैं खाली नहीं बैठा हूं कि सप्ताह भर आपके मंत्री की प्रतीक्षा करता रहूं।

ओ.के.

उसने फोन रख दिया। मेरा रक्त फिर भी खौलता रहा। लेखक न हुआ, खेल का सामान हो गया। जब चाहो फोन कर दो कि मंत्री महोदय आ रहे हैं और फिर भूल जाओ।

घंटे भर में फिर उनका फोन आया, मंगलवार संध्या समय मंत्री चार बजे चलेंगे और पांच बजे आपके घर पहुंचेंगे।

पक्का ?

इस बार बिल्कुल पक्का है।

मंगलवार का दिन प्राय: प्रतीक्षा में बीता। चार बजे, फोन बजा, मैं विधि मंत्रालय से बोल रहा हूं।

मंत्री जी नहीं आ रहे क्या?

नहीं। वे तो तैयार हैं। किंतु आपके मुहल्ले की पुलिस चौकी से सूचना मिली है कि 175 में कोई रहता ही नहीं है। आपका पता 175 वैशाली ही है न ?

पता तो वही है।

तो हमारी पुलिस ऐसी सूचना क्यों दे रही है ?

मन में आया कि कहूं कि वे आप से उत्कोच मांग रहे होंगे, पर कहा नहीं।

यह मैं कैसे बता सकता हूं। जिस पुलिस की जांच पर देश की सरकार विश्वास करती है, वह ऐसी सूचना कैसे दे सकती है। मन में आया कि साथ ही जोड़ दूं कि मैं यहां, इस घर में तीस वर्षों से रह रहा हूं। किंतु मेरे नाम पर कोई आपराधिक मामला नहीं है, इसलिए पुलिस मुझे नहीं जानती। किंतु यह सब कहा नहीं। कौन जाने मेरा फोन टैप हो रहा हो।

आधे घंटे फिर घंटी बजी। कपाट खोले तो एक पुलिस इंस्पैक्टर को खड़े पाया।

नरेन्द्र कोहली यहीं रहते हैं ?

मैं तो यही मानता हूं।

उन्हें बुलाइए। यह पुलिस वैरीफिकेशन है।

मैं ही नरेन्द्र कोहली हूं।

आप यहीं रहते हैं ?

कहा न यहीं रहता हूं। पिछले तीस साल से यहीं रहता हूं।

हमारा सिपाही बता रहा था कि इस मकान में कोई नहीं रहता।

और आपने वही सूचना विधि मंत्रालय को भेज दी। आपका सूचना तंत्र तो बहुत अच्छा है।

तो आप जानते हैं?

मंत्रालय से फोन आया था।

तो मंत्री जी आ रहे हैं ?

यह तो उनकी इच्छा पर है। वे कह कर भी नहीं आएं तो मैं क्या कर सकता हूं। पुलिस उन्हें सूचना दे दे कि यहां कोई नहीं रहता, तो मैं क्या कर सकता हूं।

हूं। उसे मेरी बात अच्छी नहीं लगी, नहीं, इस बार यह नहीं होगा। वे पांच बजे आपके घर पर पहुंच जाएंगे। वह रुका, और हां, उनसे हमारे सिपाही की शिकायत मत कीजिएगा।

उसकी आवश्यकता नहीं है। मंत्री जी स्वयं ही समझ जाएंगे।

वह चला गया।

मंत्री जी समय से आ गए। वे सहज भाव से आ कर सोफे पर बैठ गए। उनका निजी सचिव डायनिंग टेबल की एक कुर्सी घसीट कर उनसे इतनी दूर बैठ गया कि वह उनकी बात सुन सके। मेरे पी. ए. का कहना है कि यू आर ए वैरी टफ्फ मैन।

मेरी समझ में सारी बात आ गई।

डिड आई से एनी थिंग रांग ?

नहीं। नहीं। भूल हमारी ही थी। हमें आपको सूचित करना चाहिए था कि मैं शनिवार को नहीं आ सकूंगा। उस दिन मुझे एक अति आवश्यक काम से बंगलूरु जाना पड़ गया था। खैर ...

मंत्री महोदय एक निमंत्रण देने आए थे, देकर चल गए और मैं भूल गया कि मेरे क्षेत्र की पुलिस मुझे नहीं पहचानती और उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि कोई नरेन्द्र कोहली नाम काक एक लेखक यहां पैंतीस वर्षों से रह रहा है। लेखक को कौन पहचानता है।

उस घटना के प्राय: पांच वर्ष बाद फिर एक दिन बाहर की घंटी बजी। घरेलू सहायिका ने सूचना दी कि कोई पुलिस वाला आया है और वह मेरा नाम बता रहा है।

समझ में नहीं आया कि पुलिस मुझे क्यों खोज रही है। मैंने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं है। फिर सोचा कि शायद पुलिस इसी लिए खोज रही है कि मैंने कुछ किया क्यों नहीं। मैं बाहर आया। वह व्यक्ति पुलिस की वर्दी में नहीं था। चेहरे से भी भला आदमी ही लग रहा था। मेरा भय कुछ कम हो गया।

नमस्ते। उसने कहा।

नमस्ते।

मैं पुलिस के विशेष दल से संबंधित हूं। वेरीफिकेशन के लिए आया हूं।

किस बात की वेरीफिकेशन? मेरे मुख से सहज ही निकल गया। आपको गैलेंटरी एवार्ड मिल रहा है न।

मैं उसका चेहरा ताकता रह गया... गैलेंटरी एवार्ड... एक चूहा तक तो मैंने कभी मारा नहीं। फिर भारत सरकार को मेरी वीरता का पता कैसे चल गया। जी गैलेंटरी। मैं सेना या पुलिस में नहीं हूं। लेखक हूं। मुझे तो मेरी पत्नी भी कभी गैलेंटरी एवार्ड न दे।

लेखक हैं ? उसने मेरी ओर देखा, तो पद्मश्री होगा।

मैं पिघल गया।

आप भीतर आइए न। मैंने उसे भीतर ला कर बैठाया। पानी पिलाया। खय पूछी, जो उसने मना कर दी।

ऐसा है कि 30 मार्च को मुझे राष्टपति पद्मश्री दे चुके हैं और अब जून चल रहा है। अब कौन सा पद्मश्री ?

तो पद्मभूषण होगा। वह बोला।

मुझे वह व्यक्ति देवदूत लगने लगा। जून में ही वेरीफिकेशन हो रही है। और सम्मान जनवरी में घोषित होता है। तो एक ही वर्ष के अंतराल में पद्मभूषण मिल रहा है। राम जी की अपार कृपा है।

पक्की बात कह रहे हैं ?

आपके पास भी तको पत्र आया होगा।

जी नहीं। मेरे पास कोई पत्र नहीं आया है।

हमारे पास आया है। मैं दफ्तर पहुंच कर आपको वाट्सअप कर दूंगा। वह बोला, पर आप नरेन्द्र कोहली ही हैं न? आपका पता 175, वैशाली, पीतमपुरा ही है। फोन नंबर ...।

जी आपके पास सही जानकारी है।

तो ठीक है। मैं चलता हूं। दफ्तर पहुंच कर आपको वाट्सअप कर दूंगा।

मैंने बहुत प्रयत्न किया कि वह चाय या काफी पी ले किंतु वह नहीं माना और चला गया।

मैं दो दिन मग्न रहा। भगवान से अधिक सरकार का आभार मानता रहाय किंतु किसी को कुछ बताया नहीं। अभी सूचना पक्की नहीं थी।

दो दिनों के पश्चात् उसका वाट्सअप आया। मैंने उसे बहुत चाव से पढ़ा। वह पद्म सम्मानों की पूरी सूची थी। पद्मश्री में मेरा नाम भी था। किंतु वह वर्ष 2017 की सूची थी । जो सम्मान 26 जनवरी 2017 को घोषित हो चुका था और जो 30 मार्च को राष्ट्रपति भवन के दरबार हॉल में मुझे प्राप्त भी हो चुका था, वह उसकी वेरीफिकेशन करने आया था।

मैं आज तक सोच रहा हूं कि ऐसी पुलिस और ऐसी कार्यपद्धति के बल पर हमारी सरकार चोरों डाकुओं, तस्करों और आतंकवादियों को कैसे पकड़ लेती है ? (5.7.2017)

नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली – 110034

✧ ✧ ✧

लोक साहित्य में स्वतंत्रता संघर्ष

डॉ. पूरनचंद टंडन

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष आधुनिक भारत के इतिहास की एक प्रमुख घटना है, जिसके अनेकों चित्र लोक-साहित्य में मौजूद है। 1857 ई० की क्रान्ति से लेकर 1947 ई० तक के स्वतंत्रता संघर्ष को लोक-साहित्य के माध्यम से बखूबी जाना जा सकता है। स्वतंत्रता आन्दोलन की अनेक ऐसी अनुगूँजे सुनाई पड़ती हैं, जिनमें 'राष्ट्र' अथवा जन-नायकों के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति की कोशिशें दिखाई पड़ती है।

लोक-साहित्य सामान्य जनता के प्रतिरोधों या विचारों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है जिसमें जनता की भावनाओं और विचारों का अखिल तथा विशाल स्वरूप होता है। कहा जाए तो लोक साहित्य जनता के लिए जनता के ही द्वारा रचित साहित्य है, जिसमें वह अपने जीवन की वास्तविकताओं का बखान करते हुए शोषण और दमन के खिलाफ आवाज उठाती है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'लोक-साहित्य की भूमिका' में लिखा है कि "इसमें जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्मभीरु है; जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है, वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय पथ की प्रदर्शिका है; जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का संदेश देता है; जिस आर्थिक संगठन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है; जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है, वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चांद लगा देता है।" (पृ० 273)

इतिहास की प्रचुर सामग्री लोक-साहित्य में देखने को मिलती है। देश की आजादी के संघर्ष का जीता-जागता चित्र भी लोक-साहित्य में अंकित है। चाहे वह लोकगीत, लोकगाथाएँ, मुहावरे या लोकोक्तियाँ ही क्यों न हो? लोक-साहित्य जन से जुड़ा है, जिसमें हमारे आस-पास घटित घटनाओं का

लोकगीतों व लोकगाथाओं के माध्यम से जनता के सामने रखा जाता है, जिसका संबंध इतिहास से तो है, लेकिन वह सन्दर्भ रूप में नहीं मिल पाता है। यह सिर्फ जन-कवियों की वाणी में मुखरित हुआ है। यहाँ तक कि इस साहित्य के माध्यम से मानव-समाज की विकास यात्रा का भी ज्ञान होता है। इस सन्दर्भ में डॉ० शंकर लाल यादव का कहना है, "विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूप की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक है, शिला-लेख और ताम्रपत्र मलिन हो गए हैं, वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक-साहित्य ही दिशा-निर्देश करता है। आदिम मानव की आदिम वृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोक-साहित्य होता है।" (हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 43) कहने का तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य इतिहास के धूमिल अंशों को सामने लाने का माध्यम है।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष आधुनिक भारत के इतिहास की एक प्रमुख घटना है, जिसके अनेकों चित्र लोक-साहित्य में मौजूद है। 1857 ई० की क्रान्ति से लेकर 1947 ई० तक के स्वतंत्रता संघर्ष को लोक-साहित्य के माध्यम से बखूबी जाना जा सकता है। स्वतंत्रता आन्दोलन की अनेक ऐसी अनुगूँजे सुनाई पड़ती हैं, जिनमें 'राष्ट्र' अथवा जन-नायकों के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति की कोशिशें दिखाई पड़ती है। इस आन्दोलन की विभिन्न छवियाँ अलग-अलग लोकभाषाओं-अवधी, भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, खड़ीबोली आदि के लोकगीतों व लोककथाओं में विद्यमान है। सन् 1857 की क्रान्ति सं संबंधित अनेक कथाएँ पूरे देश में किसी ना किसी रूप में व्याप्त है। लोकगीतों के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष का व्यापक इतिहास मुखरित हुआ है। झांसी की रानी, तात्याँ टोपे, नाना साहब, गोखले, तिलक, लाला लाजपतराय, भगतसिंह, महात्मा गाँधी, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू आदि के संघर्ष के अनेकानेक किस्से लोक- साहित्य में खूब ढले हैं।

जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन में हजारों वीर गोलियों के शिकार हो गए और हजारों युवक फांसी पर झूल गए, जब ऐसे देश के कण-कण में राष्ट्रीयता की भावना अपने चरम पर हो तो वहाँ का लोक-साहित्य उससे दूर कैसे रह सकता था। अंग्रेजी शासन के जुल्म, उनकी लूट-खसोट, न्याय पद्धति, आर्थिक शोषण, सामाजिक भेदभाव आदि का चित्रण लोक-साहित्य में भरा पड़ा है।

भोजपुरी की बात की जाए तो 1857 की क्रान्ति की व्यापक गूँज इसमें विद्यमान है। क्रान्ति के नायक बाबू कुँवर सिंह से संबंधित अनेक गीत व कहावतें भोजपुरी में प्रचलित हैं। इस नेता की छवि भोजपुरी जन-मानस में एक राष्ट्रवादी योद्धा के रूप में दर्ज है। किन्तु भारतीय इतिहास में कुँवरसिंह की जो छवि निर्मित होती है वह लक्ष्मीबाई, नानासाहब और तात्याँ टोपे जैसे 1857 के नेताओं की तुलना में उतनी राष्ट्रवादी नहीं दिखाई पड़ती है जितनी की होनी चाहिए। जबकि उन पर रचित जन-कविताओं को देखते हुए पता चलता है कि सत्तावन की क्रान्ति में राष्ट्र को बचाने के लिए अन्य विद्रोही नेताओं की तरह बहादुरी और चतुराई से अंग्रेजों का मुकाबला किया था। ऐसे न जाने कितने ही जनान्दोलन व जनचरित्रों का नाम है जिनका उल्लेख लोक-साहित्य के अलावा कहीं नहीं मिलता है। ऐसा ही एक गीत भोजपुरी का है, जिसमें अंग्रेजों

के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँकते हुए बाबू कुँवर सिंह लक्षमनपुर से आगे बढ़े तो गाँव-गाँव की तरुणाई जाग उठी। बहोरनपुर, लच्छू टोला, बरसींघा, सारंगपुर, सुरेमनपुर, गउरा, करजा आदि भोजपुर जनपद के गाँव विद्रोह की लहर में बह गए–

जब बढ़ल कुँअरदल लक्षमनपुर से आगे
पथ गाँव-गाँव तरनाई जागल अनुरागे
जागल बहार बा गाँव बहोरनपुर में
लच्छू टोला, बारसींघा, सारंगपुर में
संग लागल सुरेमनपुर, गउरा अगराईल
धनबाग पहरपुर के उमंग में आईल
आते 'करजा' जे दादा के गुरुद्वारा
जहाँ समाधि कवि देव राम दुलारा।

(सर्वदेव तिवारी 'राकेश' - 'कालजयी कुँवरसिंह',
पन्द्रहवाँ सर्ग, पृ० 315)

भोजपुरी जन-साहित्य से पता चलता है कि कुँवरसिंह का संघर्ष अंग्रेजों से होता है, जिसमें कुँवरसिंह की मानसिकता, जनता की बीच व्याप्त उनका सामाजिक आधार और समाज तथा राष्ट्र को बचाने की चिंताएँ दिखाई पड़ती है। एक प्रसंग है, जिसमें यह बताया गया है कि कुँवर सिंह भी मंगल पाण्डे और पीर अली की फाँसी के बाद जनता की बेचैनी और असंतोष के साथ अपने को जोड़ लेते हैं तथा उनके मन में भी अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना पनपने लगती है। अपने मन में व्याप्त बेचैनी, असंतोष और विद्रोह की भावना को अपने छोटे भाई अमरसिंह के साथ बाँटते हैं। साथ ही, इस गीत में उस ऐतिहासिक तथ्य यानी उस चर्बी वाले कारतूसों का भी उल्लेख है जिसके चलते मंगल पाण्डे को फाँसी दी गयी थी–

लिखि-लिखि पतिआ भेजले कुँवर सिंघ,
सुन हो अमरसिंह भाई।
चमवा के टोटवा दाँत से कटावे, छतरी धरम नसाई।
बात के खातिर बाबू कुँवर सिंह,
ले लै फिरंगिया से रार हो भाई।

(बद्रीनारायण, लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ० 92)

कुँवरसिंह के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को लेकर, आम जनता कितनी उत्तेजित और उत्साहित थी, इसका अन्दाजा भोजपुरी कविताओं के माध्यम से लगाया जा सकता है।

मनोरंजन प्रसाद सिंह ने अपनी चर्चित कविता 'कुँवर सिंह' में उस घटना का भी उल्लेख किया है, जिसमें गंगा नदी पार करते हुए कुँवर सिंह के दाहिने हाथ में अंग्रेजों की गोली लगने के बाद, बाँयें हाथ से तलवार लेकर दाहिना हाथ काटकर उसे गंगा को भेंट कर देते हैं–

"दुश्मन तट पर पहुँच गये, जब कुँअर सिंह करते थे पार,
गोली आकर लगी बाँह में, दायाँ हाथ हुआ बेकार।
हुई अपावन बाहुजान, बस काट दिया लेकर तलवार,
'ले गंगे, यह हाथ आज', तुझको ही देता हूँ उपहार।
वीर-भक्त का, वही जाह्नवी, को मानो नजराना था,
सब कहते हैं कुँअर सिंह भी बड़ा वीर मर्दाना था।" (पृ० 183)

ऐसी घटनाओं का भोजपुरी समाज पर गहरा असर दिखाई पड़ता है तथा वहाँ के लोग इन गीतों का उल्लेख राष्ट्रवादी दृष्टि से करते हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन में सुखदेव-भगत (1840-1899) जैसे लोक कवि का नाम भी किसी से छिपा नहीं है। इन्होंने सामाजिक समस्याओं जैसे-दहेज प्रथा, नारी- समस्या, भ्रष्टाचार, विधवा-विवाह, छुआछूत, अनमेल-विवाह आदि पर अपनी आवाज उठाई। सुखदेव की भाषा भोजपुरी थी। वे अपनी इस भाषा में लोकोक्तियाँ, उपदेश गीत, लोककथाएँ कहते थे। सन सत्तावन की क्रान्ति के समय कम उम्र के होने के बावजूद वे घूम-घूमकर अपने शिष्यों को इस आन्दोलन में भाग लेने को उत्साहित व प्रेरित करते थे। सुखदेव-भगत एक पिछड़ी जाति से जुड़े हुए थे। इनका जीवन-स्तर सामान्य किसान से भी निम्न था। इसलिए इनको अपने जीवन में कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा। फिर भी इन्होंने अपने उपदेश व गीतों के माध्यम से औपनिवेशिक राज के स्थानीय प्रशासन के भ्रष्टाचार एवं दमन के प्रति अनन्त प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है। वे सरकार के कर्मचारियों पर व्यंग्य किया करते थे। गाँव की तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए उनकी एक कहावत है–

हमनी गरीबवन के चूस के
बाप बनल 5 मूस के

(ओरल हिस्ट्री कैसेट नं० 6)

अर्थात्, हम गरीबों को चूसकर इतने मोटे हुए हैं कि मूस के पिता के समान दिख रहे हैं। इस प्रकार सुखदेव-भगत ने अपने गीतों व कहावतों में स्थानीय तंत्र के प्रति खीझ और प्रतिरोध की भावना व्यक्त की है।

राष्ट्रीय चेतना को जगाने में महेश नारायण की खड़ी बोली में लिखित कविता, लेख व साहित्यिक रचनाओं का योगदान भी प्रमुख है, जिसमें उन्होंने अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियों के खिलाफ जनता के अन्दर राष्ट्रीयता और भारतीयता का अलख जगाना शुरू किया। महेश नारायण ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता लेखन संबंधी ब्रजभाषा की अवधारणा के खिलाफ जाकर, खड़ी बोली हिन्दी में काव्य लेखन शुरू किया तथा 1881 ई० में 'बिहार बंधु' में 'स्वप्न' कविता का प्रकाशन किया। यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जो 1857 के बाद की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों, घटनाओं और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संदर्भों की ओर संकेत करते हुए इतिहास और कविता के बीच एक द्वंद्वात्मक रिश्ता कायम करती है। यह कविता सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों एवं मान्यताओं से टकराते हुए जनता की सुरक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और

ब्रिटिश साम्राज्यवाद से राष्ट्र की मुक्ति की कामना जैसे प्रमुख सवालों को उठाती है। कविता के प्रारम्भ और अंत में भारतीय समाज में स्त्रियों के शोषण, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, पुरुष समाज का वर्चस्व आदि का उल्लेख भी है। 1857 के बाद लागू ब्रिटिश आर्म्स एक्ट का भी विरोध इस कविता में है–

रऐयत तो हयाँ रखती होगी अपना हथियार
हम लोग के पास वाँ नहीं है एक तलवार
है हम लोगों को उनकी यह भक्ति
कि दे के सब अस्त्र स्वाधीनता ही गवाई

(सन्दर्भ : भारतीय राष्ट्रवाद का निम्नवर्गीय प्रसंग,
रश्मि चौधरी, पृ० 86)

इसके अलावा यह कविता आर्थिक शोषण के खिलाफ प्रतिरोध, राष्ट्र की दासता से मुक्ति की कामना तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मौजूद अनमेल विवाह और स्त्रियों की जिंदगी के सवाल के प्रमुखता के साथ उठाती है। इन सभी सवालों को कवि महेश नारायण स्वाधीनता से जोड़कर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करते हैं, जिसमें सब कुछ स्वदेशी हो, मजबूत व्यवस्था हो, खुली सामाजिक जिन्दगी और प्राकृतिक सुन्दरता हो। महेश नारायण जैसा कार्य भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और यशपाल जैसे साहित्यकार करते हैं, जो अंग्रेजी शासन के प्रति विरोध रखते हुए भारतीय समाज में व्याप्त स्त्रियों, मध्यमवर्गीय लोगों, दलितों, किसानों, मजदूरों आदि की समस्याओं को राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल से जोड़कर भारतीय राष्ट्रवाद का एक नया इतिहास रचते हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बंगला में रचित अपनी कविताओं के द्वारा अंग्रेजों की नीतियों का पुरजोर विरोध किया है। उनके द्वारा बंग–भंग के समय लिखे गए गीतों को राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों सहित आम जनता भी उत्साहपूर्वक गाती है। यद्यपि भोजपुरी में 'बंग–भंग' व 'स्वदेशी– आन्दोलन' से संबंधित कविताएँ काफी कम दिखाई पड़ती है, परन्तु खड़ी बोली में कुछ ऐसी कविताएँ जरूर है जो राष्ट्रीय चेतना व स्वदेशी आन्दोलन को एक नया आयाम प्रदान करती है। इनमें अभिराम शर्मा, प्रणयेश शर्मा व पं० माधव शुक्ल की रचनाओं को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। माधव शुक्ल की अधिकांश कविताएँ तो ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गई थी। इन्होंने 'वीर बंधु', 'दासता', 'धन्य आर्य कुल वीर लाजपत नरवर श्रीयुत' जैसे अनेक देशभक्ति परक कविताओं की रचना की। इनमें से ज्यादातर कविताओं का प्रकाशन बालकृष्ण भट्ट द्वारा संपादित पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' में हुआ, जो राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों व लेखकों के बीच लोकप्रिय पत्रिका थी।

'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित माधव शुक्ल की कविता का एक उदाहरण है–

वीर बन्धु है कौन देश में कौन बुद्धि बलशाली है,

यदि विचार देखो तो भाई आर्य पुरुष बंगाली है।
कौन स्वदेशी सेवक सच्चे कौन सुदृढ़ प्रणपालक है,
बुध जनों! यह कहना होगा, बंग-देश के बालक है।।

(नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, संपादक :
चर्चित राष्ट्रीय गीत, भाग-1, पृ० 83)

स्पष्टत: ये कविताएँ स्वतंत्रता आन्दोलन की उस चेतना की ओर इशारा है जो बंग-भंग के कारण उत्पन्न होती है। इन कविताओं में राष्ट्रवादी नेताओं का भी चित्रण किया गया है।

जब कवि इन राष्ट्रवादी नेताओं का उल्लेख अपनी रचनाओं या गीतों में करते हैं तो पुलिस उन राष्ट्रवादी नेताओं को पकड़ लेती है और जेल में डाल देती है, तब जनता दु:खी हो जाती है और उसे लगने लगता है कि अब 'स्वराज नहीं मिलेगा'–

अब ना मिलिहें सोराज ।।टेक।।
सउकत अली, लाला लाजपति,
अवरु सिआरन दास ।।टेक।।
ई सभ बीर पड़े जेलखनवाँ,
अब ना मिलिहें सोराज ।।टेक।।

(कर्मेन्दु शिशिर : भोजपुरी होरी गीत, भाग-1, पृ० 83-84)

भोजपुरी में रचित इस कविता में बंग-भंग और उसके बाद की तमाम घटनाओं का वर्णन है, जिसमें सारे बड़े राष्ट्रवादी नेताओं को पुलिस पकड़ लेती है और जेलों में डाल देती है तथा तरह-तरह की सजा सुना रही है।

अंग्रेजों के शोषण के कारण जनता भूख से बेहाल है, किसानों की हालत खराब हो गयी है। अपनी बदहाली की स्थिति व दु:ख को जनता बार-बार अभिव्यक्त करती है। इस गीत के माध्यम से जनता की मार्मिक स्थिति को समझा जा सकता है–

हो गइली कंगाल, हो विदेसी, तोरे रजवा में।
सोने की थारी, जहाँ जेवना, जेवत रहनी,
कठवा के डोकिया के भइली मुहाल।
भारत के लोग आजु, दाना बिनु, तरसे भइया,
लन्दन के कुतवा, उड़ावे मजा माल,
हो विदेशी, तोरे रजवा में।

(श्रीधर मिश्र : भोजपुरी लोक साहित्य :
सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 204-205)

जब राष्ट्रीय आन्दोलन में सरकार तिलक, लाला लाजपत राय, जैसे राष्ट्रवादी नेताओं को पकड़कर जेल में डाल देती है तो उसका गहरा असर जनता पर पड़ता है। जनता अंग्रेज सरकार के विरुद्ध उग्र रुख अपनाती है, हड़तालें होती है, जुलूस निकलते हैं जिसमें आम जनता के साथ-साथ कई स्वतंत्रता सेनानी भी आहत होते हैं। बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक' की 'खून के छीटें' नामक एक रचना है जिसे ब्रिटिश राज में प्रतिबंधित कर दिया था। इस कविता में तिलक का जेल जाना, फिर जेल से बाहर आकर 'होमरुल लीग' का गठन करना और 'स्वराज्य' की माँग को तेज करना आदि का उल्लेख किया गया है-

पराधीनता का पाप, दाप, पश्चाताप जब,
भारत-निवासियों में भलीभाँति छाया था।
देखकर पशु-बल का प्रबल उन्माद,
जब देश-सेवकों का दल, अकुलाया था।
नीति का महत्त्व जब बम बरसाने में था,
करुण कथा को अत्याचार ने छिपाया था।
'रसिक' फिरंगियों का गर्व हरने को तब
शांत क्रांतिकारी श्री तिलक देव आया था।

(रूस्तम राय, संपादक : प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग-2, पृ० 42)

स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधी जी का आगमन एक बड़ी घटना के रूप में देखा जाता है। अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधी जी ने स्वाधीनता आन्दोलन की डोर अपने हाथों में ले लिया। साबरमती आश्रम की स्थापना, चम्पारण सत्याग्रह, रॉलेट एक्ट के खिलाफ सत्याग्रह एवं देशव्यापी हड़ताल, असहयोग आन्दोलन आदि घटनाओं ने गाँधी को जनता के बीच लोकप्रिय बना दिया। उस समय जनता के मानस में सिर्फ एक ही छवि उबर रही थी गाँधी जी की। तभी तो निर्धनराम जैसे जन-कवि ने कहा है–

गाँधी में गुन बहुत है, सदा लीजै नाम
दीन दुख दरिद्र भगावै और बनावै काम

आगे फिर वो गाँधी का चित्रात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं–

हाथ में लाठी सोहे कण्ठ में पुकार
हो मेरे गाँधी कैसे मैं भव करूँगा पार।।

इन गीतों में एक पीड़ित मन की कथा है। इसी समय कवि कैलाश भी अपनी व्यंग्यात्मक एवं विनोदपूर्ण तुकबन्दी के द्वारा जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार कर रहे थे। कवि कैलाश ने कुछ समय अंग्रेजी सेना में भी नौकरी की थी, लेकिन कुछ समय में ही भारतीय सैनिकों के प्रति अंग्रेज अफसरों के व्यवहार से तंग आकर एवं दमनतन्त्र की सच्चाई समझकर सेना से भाग

आए। उसके पश्चात् वे राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये। कवि कैलाश 1921 के बाद विभिन्न तरह से स्थानीय राष्ट्रवादी संघर्ष में सक्रिय भूमिका प्रदान करते रहे। इसके कारण कवि को काफी यातनाएँ भी झेलनी पड़ी, जिसमें छः मास का कारावास प्रमुख है। कवि की इन पंक्तियों में अंग्रेजी शासन के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त है–

जे खाला घीव मलीदा, ओकर कान बहिराइल बा।
डंडा उठावा चल फिरंगियन के भगावे के दिन आईलबा।।
कहे कवि कैलाश, उठाव डंडा।
तबहिं फूटी अंग्रेजवन के भंडा।।

इसके अलावा कवि कैलाश ने जमींदार विरोधी तथा किसान के हितों की सजग चेतना से युक्त लोक कविता भी की है।

1857 की क्रान्ति में सभी संगठन एकजुट होकर सामने आए, लेकिन फिर भी सफलता नहीं मिली। उसके बाद महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया, जिसका उद्देश्य स्वराज तक ही सीमित नहीं था, बल्कि देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रगति की ओर उन्मुख था। असहयोग आन्दोलन के समय का पंजाबी भाषा का नरेन्द्रधीर का एक लोकगीत है, जिसमें लोक ने अंग्रेजी शासन के न्यायपद्धति की नग्न तस्वीर प्रस्तुत करते हुए आलोचना की है–

नाँ तौ मेरी लई उगाही, नाँ सब बात पछाणी।
कन्नों बोली दिसे अदालत, अक्खों बी है काणी।
सच्चे फैसले किवें करे ओह, जिहने बड्डी होवे खानी।
नर काँच पये जिन्दड़ी, मिले न तिहाये नूँ पाणी।
(नरेन्द्रधीर, हँसता गाता पंजाब, पृ० 94-95)

अदालत ने मेरी गवाही भी पूर्ण रूप से नहीं ली अर्थात् मुझे अपना पक्ष रखने का पूरा अवसर ही नहीं दिया। ना ही अदालत ने मेरी सभी बातों की पहचान की अर्थात् प्रमाण लिये। मुझे ऐसा लगता है कि अदालत कानों से ही बहरी है। वह मुझे आँखों से भी कानी प्रतीत होती है। वह अपने फैसले सच्चे किस प्रकार करे जब वह कटी-कटाई फसल ही खाने की आदी हो चुकी है अर्थात् निकम्मी हो चुकी है। ऐसे शासन में तो हमारा जीवन भी नारकीय हो चुका है। यहाँ तो प्यासे को पानी भी मिलना मुश्किल है। देखा जाए तो इस गीत में रॉलेट एक्ट के बारे में बताया गया है।

1919 के बाद खड़ी बोली हिन्दी और भोजपुरी के लोक-साहित्य में गाँधी के असहयोग और अहिंसा आन्दोलन की जो जन-छवि निर्मित होती है, उसमें उनके 'सक्रिय प्रतिरोध' का यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है। खड़ी बोली के अज्ञात जन कवि ने गाँधी के प्रतिरोध को कुछ इस तरह व्यक्त किया है–

साबरमती से चला संत, एक अहिंसाधारी
जगत में सन्नाटा छाया घूमी पृथ्वी सारी

काँपे कमरिया हाथ में लाठी एक लँगोटाधारी
चला नमक कानून तोड़ने स्वराज का अधिकारी
चला दुखों का दुर्ग तोड़ने, चालीस कोटि बंध तोड़ने
जेल को जिसने तीर्थ बनाया आजादी है प्यारी
साबरमती से चला संत, एक अहिंसाधारी।
दुर्बल देह प्रबल मन वाला सच्चा सेवाधारी
जनसेवा को जीवन समझा जिसे एकता प्यारी
घर में जा जा अलख जगाया आजादी का पाठ पढ़ाया
खादीधारी हमें बनाया भारत तेरा पुजारी।

(विश्वमित्र उपाध्याय,
लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना, पृ० 118-119)

देखा जाए तो इस गीत में डांडी यात्रा (1930) का ऐतिहासिक संदर्भ है। साथ ही गाँधी जी के व्यक्तित्व का भी उल्लेख इसमें किया गया है। पूर्णत: कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधी जी का अहम स्थान है।

लोक साहित्य की बात करे तो भोजपुरी भाषा के ही प्रमुख कलाकार भिखारी ठाकुर के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। इन्होंने लोक काव्यात्मक शैली में अनेक नाटक लिखे हैं, जिनमें बिदेसिया, भाई विरोध, बेटी वियोग, कलियुग प्रेम प्रमुख हैं। इनके नाटकों में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी है। साथ ही भारतीय ग्रामीण जीवन की दर्दनाक गाथा, पुलिस दमन, सामाजिक विसंगतियाँ, अंग्रेजी औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध उपालंभ को भी इन्होंने अपनी रचनाओं में लक्षित किया है।

स्पष्टत: भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की अनेक छवियाँ लोक-साहित्य में मौजूद है। चाहे वह 1857 की क्रांति, स्वदेशी आन्दोलन, रॉलेट एक्ट, जालियाँवाला बाग हत्याकांड, असहयोग आन्दोलन, साइमन कमीशन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोड़ो आदि है। अत: हम देखते हैं कि स्वतंत्रता संघर्ष की ऐसी अनेक घटनाएँ व उनसे जुड़े लोग हैं जिनके संबंध में इतिहास भी मौन है। उनका चित्रण केवल हमें सीधी और सरल भाषा में लोक-साहित्य में ही देखने को मिलता है।

1. लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति – डॉ० रामनिवास शर्मा, 2. लोक-संस्कृति और इतिहास – बद्री नारायण, 3. लोक-संस्कृति में राष्ट्रवाद – बद्री नारायण, 4. भारतीय राष्ट्रवाद का निम्नवर्गीय प्रसंग – रश्मि चौधरी

डॉ. पूरनचंद टंडन, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्तमान सन्दर्भ में कबीर की प्रासंगिकता

प्रो. (डॉ.) छाया सिन्हा

मिसाल के तौर पर जाति-प्रथा आज भी हमारी ज्वलंत समस्या है। लोभ, चुनावी लाभ की मंशा और अरक्षण के भाव ने जाति-व्यवस्था को एक नये रूप में मजबूत किया है। लेकिन यह जात-पाँत स्वस्थ समाज के विकास में पूर्णतः बाधक है और इसके चलते भी आए दिन लूट, अपहरण, हत्या जैसे नाना प्रकार के अपराध और दुराचार हो रहे हैं।

कबीर की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में सबसे पहले यह देखना आवश्यक है कि उनका समाज कैसा था, उन्होंने अपने समाज को कितनी पैनी निगाह से देखा-परखा था और उस व्यवस्था की जड़ें बढ़ती-बढ़ती वर्तमान समाज में कहाँ तक और किस गहराई तक फैली हैं। कबीरकालीन समाज के सम्बन्ध में डॉ० शुकदेव सिंह की टिप्पणी बहुत ही मूल्यवान है कि यहाँ हिन्दू रहते थे, मुसलमान रहते थे, शैव थे, वैष्णव थे, ब्राह्मण और कसाई थे, शेख और मुल्ला थे, यहाँ मन्दिर थे, मस्जिद थे, वेद और कुरान थे, आदमी और आदमी के बीच फर्क थे, गरीब और लुटेरे थे। यहाँ कुछ लोग केवल कमा रहे थे और कुछ केवल खा रहे थे। इस जहान में धर्म थे, उनकी टकराहट थी, आचार थे, ईश्वर के अनेकों अवतार थे, पाखण्ड थे, तीर्थ थे। कबीर ने समझ लिया था कि इस अंधे विस्तार में सबकुछ है, केवल रोशनी नहीं है। इस समाज में एक ओर उच्च स्तर के वे लोग थे जो विलासिता के पंक में डूबे थे तो दूसरी ओर कबीर के इर्द-गिर्द के बुनकर, दर्जी, धोबी, मोची, नट, बाजीगर आदि निम्नतम श्रेणियों के लोग थे। ये ही लोग श्रम करते थे, फिर भी दरिद्र, रोगी, अशिक्षित, सब प्रकार के शोषित और वंचित थे। कबीर ने अनुभव किया था कि इन बेजुबान लोगों की जुबान बनने की आवश्यकता है। इसलिए वे अपने समकालीन समाज में व्याप्त शोषण, उसकी बुराइयों और विसंगतियों के खिलाफ ताल ठोंककर मैदान में

उतर गये और सामाजिक बुराईयों के विरोध के साथ शोषितों की पक्षधरता भी की।

कबीर सामाजिक न्याय के अप्रतिम योद्धा थे। आज भी जब-जब सामाजिक न्याय को लेकर संघर्ष की बात उठती है, लगता है, उसके नेपथ्य से महान स्वप्नद्रष्टा कबीर की ही प्रेरक वाणी गूँज रही है। उनकी जीवन जिह्वा जलती हुई वह मशाल है जो वर्तमान में भी भारतवर्ष तथा संसार की विविध समस्याओं को सुलझाने की राह दिखाती है।

मिसाल के तौर पर जाति-प्रथा आज भी हमारी ज्वलंत समस्या है। लोभ, चुनावी लाभ की मंशा और असुरक्षा के भाव ने जाति-व्यवस्था को एक नये रूप में मजबूत किया है। लेकिन यह जात-पाँत स्वस्थ समाज के विकास में पूर्णत: बाधक है और इसके चलते भी आए दिन लूट, अपहरण, हत्या जैसे नाना प्रकार के अपराध और दुराचार हो रहे हैं। कबीर इस जाति-प्रथा के खोखलेपन को भली-भाँति जानते थे तथा अम्बेदकर के बहुत-बहुत पहले ही उसे फसादों की जड़ मान चुके थे। इसीलिए स्पष्ट शब्दों में अनेक अवसरों पर उन्होंने इस प्रथा का विरोध किया और कहा–

जाति-पाँति पूछै नहिं कोई।

हरि के भजै से हरि के होई।।

उन्होंने वर्णाश्रम धर्म के साथ ही छुआछूत, ऊँच-नीच की भावना आदि का निषेध करते हुए मानवमात्र की समानता का जो सन्देश दिया था, वह आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है।

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पुजूँ पहार।

ताते ये चाकी भली जो पीस खाये संसार।। - कहकर

उन्होंने जहाँ मूर्ति-पूजा का विरोध किया, वहीं यज्ञ, हवन, रोजा, नमाज, तीर्थ-व्रत जैसे पाखण्डों का भी विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि सम्प्रदायों के आग्रह छोड़ देने से उनकी रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं और राम-रहीम भी एक हो जाते हैं–

काशी काबा एक है एकै राम रहीम।

मैदा इक पकवान बहु बैठि कबीरा जीम।।

आज जब आए दिन मन्दिर-मस्जिद-विवाद विशेषत: राम मन्दिर-बाबरी मस्जिद विवाद साम्प्रदायिक तनाव की आग को हवा दे रहे हैं, तब कबीर की उदारता का स्मरण अनिवार्यत: हो आता है। इस साम्प्रदायिक तनाव के विरुद्ध साम्प्रदायिक सद्भावना की जरूरत को देखते हुए कबीर की प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

जिस तरह से आज भी हरिजनों का दमन हो रहा है तथा हिन्दू-मुसलमान, हिन्दू-सिक्ख

आदि के बीच दुर्भावनाएँ रह-रहकर बढ़ जाती हैं, ईसाईयों पर भी आक्रमण की छिटपुट घटनाएँ होने लगी हैं, उन सबके चलते देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था खतरे में पड़ जा सकती है। ऐसी स्थिति में कबीर जैसे दूरदर्शी महान चिंतक की अमर वाणियों की प्रासंगिकता को बड़ी शिद्दत से महसूस किया जा रहा है।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में समानता के मौलिक अधिकार की जो गारंटी दी गयी है, उसका प्रारूप आज से छः सौ वर्ष पूर्व महात्मा कबीर तैयार कर चुके थे। भारत में लिंग, जाति, धर्म, वर्ण आदि का भेदभाव किये बिना कानून के सम्मुख सबकी समानता संवैधानिक दृष्टि से भले ही सुरक्षित कर दी गयी हो, लेकिन व्यवहार में ऐसी समानता आज तक नहीं हो पायी है। आज इसके लिए धार्मिक संघर्ष तो नहीं, किन्तु जो राजनीतिक संघर्ष हो रहे हैं, उनमें कबीर के विचार आकाशदीप की तरह हमारा पथ प्रदर्शन कर सकते हैं।

सामाजिक मान्यताओं पर कबीर ने कुछ भी ऐसा नहीं कहा जिसका दुरुपयोग किया जा सके। तुलसी तक के साहित्य में बहुत कुछ ऐसा दिखाया जा रहा है, जिसकी आँच में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ हाथ सेंक रही हैं और वे भोली-भाली जनता की चेतना को कुण्ठित करती हुई उनके सहज मार्ग को अवरुद्ध कर रही हैं। मानना पड़ेगा कि प्रासंगिकता के बिन्दु पर भक्ति-काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों में कबीर अद्वितीय हैं।

वर्तमान समय में द्वैत शासन-प्रणाली जनता के लिए बहुत कष्टदायी है। केन्द्र में जिस दल की सरकार कार्य करती है, राज्य में उससे भिन्न दूसरे दल की सरकार काम करती देखी जाती है। इन भिन्न विचारोंवाली सरकारों की परस्पर विरोधी नीतियों तथा असहयोग की भावना के चलते उस राज्य की जनता पिसती रहती है। अभी हाल में हमारा बिहार भी यही दंश झेल रहा था। कबीर जैसे भविष्यद्रष्टा कवियों की वाणी देश और काल की सीमाओं को भी तोड़े देती है। यही कारण है कि द्वैत शासन-प्रणाली के बिन्दु पर भी, कबीर के विश्वास की प्रासंगिकता बनी हुई है–

नगर चैन तब जानिये, जब एकै राजा होय।

याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय।।

कबीर के समय में भी एक सुविधाभोगी उपभोक्ता-वर्ग – उच्च वर्ग था। यह वर्ग उत्पादन नहीं करता था, परन्तु उत्पादित वस्तुओं का भरपूर उपभोग करता था। दूसरा वर्ग उत्पादकों का था। यही वर्ग उत्पादन का कार्य करता था, पर सुख-सुविधाओं से वंचित, पूर्णतः उपेक्षित और दलित था। तमाम निर्गुणिया संतों की तरह कबीर भी इसी उत्पादक निम्न वर्ग से आये थे। स्वभावतः उनकी सहानुभूति अपने इसी वर्ग के साथ थी–

दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।

बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय।।

आज भी समाज का कमोबेश वही ढाँचा है, भले ही हम उत्पादकों के उत्थान की लम्बी-चौड़ी बातें कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में कबीर उनके सच्चे प्रवक्ता के रूप में खड़े जान पड़ते हैं–

माटी कहै कुम्हार से तूँ क्या रुँदै मोहिं।

इक दिन ऐसा होयगा मैं रुँदूगी तोहिं।।

भौतिकतावादी सभ्यता की चकाचौंध में पनपती असहिष्णुता से हो रहे भयानक दुष्परिणामों के सामने कबीर की मीठी बानी वाला उपदेश आज भी मन को शीतल कर देता है–

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।

औरन को सीतल करे आपहू सीतल होय।।

और

मधुर वचन है औषधि कटुक वचन है तीर।

श्रवण द्वारा ह्वै संचरै सालै सकल सरीर।।

समाज में संक्रामक रोग की तरह फैल रहे क्रोध, कपट, घृणा और अहंकार भरे वातावरण को देखकर कबीर दु:खी हो जाते हैं। इससे उपजे तनाव और रुग्ण मानस के सामने उनके अक्रोध और अहंकारहीनता के उपदेश आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं–

आज के समाज के लिए महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता न केवल भारत बल्कि विश्व की राजनीति और समाज-नीति के लिए स्वीकार की जा चुकी है। स्वयं महात्मा गाँधी ने मांसाहार को अनैतिक और स्वास्थ्यविरुद्ध माना है। इस बिन्दु पर कबीर की प्रासंगिकता की बात ही क्या है। उनकी अहिंसा तो बुद्ध की अहिंसा का पर्याय है। वे केवल कर्मणा को ही हिंसा नहीं कहते, बल्कि मनसा और वाचा हिंसा को भी हिंसा मानते हैं। अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो कबीर के अहिंसा सम्बन्धी विचार अधिक सशक्त और परिपूर्ण हैं।

कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।

किया कराया सब गया, जब आया अहंकार।।

आज की भोगवादी संस्कृति में न तो लोग इन्द्रियानिग्रही हैं, न उसकी चिन्ता है, बल्कि यह तो फैशन है। ऐसे ही भोगी लोगों की जिह्वा-विलासिता पर कबीर अफसोस करते हैं–

"खट्टा-मीठा चरपरा जिह्वा सब रस लेय।

चारों कुतिया मिलि गईं पहरा किसका देय।।"

जन-जीवन में फैलती मांसाहार की प्रवृत्ति के प्रति भी वे लोगों को सावधान करते हैं–

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।

जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल।।

इसलिए वे कहते हैं–

खुस खाना है खीचरी माहिं परै टुक नौन।

मांस पराया खायकर गरा कटावै कौन।।

ध्यातव्य है कि इसी खिचड़ी को अब भारतीय पहचान दिलाने के लिए ब्रांड इंडियन फुड के रूप में प्रोन्नत किया जा रहा है।

कबीर के मांसाहार सम्बन्धी उपर्युक्त विचार पर आधुनिक चिकित्साशास्त्री भी स्वीकृति की मुहर लगाते हैं और मनुष्यों के लिए शाकाहार को श्रेयस्कर बताते हैं।

आज के समाज के लिए महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता न केवल भारत बल्कि विश्व की राजनीति और समाज-नीति के लिए स्वीकार की जा चुकी है। स्वयं महात्मा गाँधी ने मांसाहार को अनैतिक और स्वास्थ्यविरुद्ध माना है। इस बिन्दु पर कबीर की प्रासंगिकता की बात ही क्या है। उनकी अहिंसा तो बुद्ध की अहिंसा का पर्याय है। वे केवल कर्मणा को ही हिंसा नहीं कहते, बल्कि मनसा और वाचा हिंसा को भी हिंसा मानते हैं। अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो कबीर के अहिंसा सम्बन्धी विचार अधिक सशक्त और परिपूर्ण हैं। जब बापू आज के लिए प्रासंगिक हैं तो यह बात किसी की भी समझ में सहज ही आ जा सकती है कि आज के समाज के लिए कबीर कितने प्रासंगिक हैं।

डॉ. छाया सिन्हा, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जे0 डी0 वीमेन्स कॉलेज, पटना।

परिभाषिक शब्दावली निर्माण की अवधारणा

प्रो. डॉ. रामस्वरूप भगत

रेण्डम-हाउस शब्द-कोश में विशिष्ट विषय यथा विज्ञान, कला आदि की तकनीकी अभिव्यक्ति के लिए निश्चित अर्थ अथवा विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को पारिभाषिक शब्द कहा गया है।[1] सूरजभान सिंह के अनुसार पारिभाषिक शब्द केवल अभिधार्थ में ही ग्रहण किये जाते हैं। लक्ष्यार्थ, व्याग्यंग्यार्थ के रूप में नहीं।

ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों की अपनी-अपनी शब्दावली होती है। भाषिक संप्रेषण की स्वाभाविक प्रक्रिया में विभिन्न कार्यक्षेत्रों में जरूरतों के अनुरूप उन क्षेत्रों को अपनी शब्दावली विकसित हो जाती है। कई शब्द किसी क्षेत्र विशेष में किसी अभिप्राय के लिए निश्चित अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं। क्षेत्र विशेष की यह शब्दावली उससे संबंधित प्रयुक्ति पारिभाषिक शब्दावली का सीधा संबंध उस भाषा-भाषी जन समूह के सांस्कृतिक और वैचारिक विकास से होता है। जैसे- जैसे किसी जन समुदाय का जीवन अपेक्षाकृत अधिक जटिल, संश्लिष्ट तथा वैविध्यपूर्ण होता जाता है, उसकी भाषा में मूर्त-अमूर्त कल्पनाओं का विकास भी होता जाता है। उन संकल्पनाओं के लिए सामान्तर रूप से पारिभाषिक शब्द विकसित होती जाती है। इस प्रकार, कला, विज्ञान, वाणिज्य, प्रशासन, विधि आदि विभिन्न ज्ञान के क्षेत्रों में चिंतन और व्यवहार के माध्यम से विभिन्न प्रकार की संकल्पनाएँ निरंतर विकसित होती रहती है। अतः स्पष्ट है कि समाज के जिन-जिन क्षेत्रों में विकास होगा, उन-उन क्षेत्रों की पारिभाषिक शब्दावली, उस समाज की भाषाओं में विकसित होगी।

अब प्रश्न है कि पारिभाषिक शब्द है क्या? उनकी क्या विशेषताएँ हैं तथा उनका प्रयोग कहाँ किया जाता है? ध्यातव्य है कि भाषा की सबसे छटी इकाई को शब्द कहते हैं। प्रयोग की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के होते हैं

(1) सामान्य शब्द (2) अर्द्धपारिभाषित शब्द और (3) पारिभाषिक शब्द। जिन शब्दों का प्रयोग हम दैनदिन-जीवन में करते हैं, वे सामान्य शब्द कहे जाते है। यथा किताब,-कलम घर आदि। [2] अर्द्धपारिभाषिक शब्द उन शब्दों को कहते हैं, जो सामान्य अर्थ और पारिभाषिक अर्थ दोनों रूपों में प्रयुक्त होते है। अर्थात कई बार सामान्य-जीवन में प्रयुक्त होने वाला शब्द किसी विशेष क्षेत्र के लिए पारिभाषिक शब्द भी बन जाता है। यथा आदेश, धारा सहायक आदि। पारिभाषिक शब्द वे शब्द होते है जिन्हें एक निश्चित परिभाषा दी जा सके। एक प्रकार से उन्हें किसी अर्थ की सीमा में सीमित कर दिया जाता है। जैसे- आयकर, विधि, संविधान आदि। यहाँ आयकर शब्द का प्रयोग सरकार के राजस्व वसूली से संबंधित है। सरकार से भिन्न किसी संस्था द्वारा वसुल की जाने वाली राशि आयकर नहीं कहलायेगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पारिभाषिक शब्दों का तात्पर्य उन शब्दों से है जो किसी क्षेत्र विशेष में एक शिक्षित और परिसीमित अर्थ को प्रकट करते हैं।

रेण्डम-हाउस शब्द-कोश में विशिष्ट विषय यथा विज्ञान, कला आदि की तकनीकी अभिव्यक्ति के लिए निश्चित अर्थ अथवा विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को पारिभाषिक शब्द कहा गया है।[1] सूरजभान सिंह के अनुसार पारिभाषिक शब्द केवल अभिधार्थ में ही ग्रहण किये जाते हैं। लक्ष्यार्थ, व्याग्यंग्यार्थ के रूप में नहीं। भारतीय भाषाशास्त्री डॉ0 भोलानाथ तिवारी के शब्दों में कहे तो पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं, जो रसायन, भौतिकी दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विज्ञान या शास्त्रों के शब्द होते हैं तथा जो अपने-अपने क्षेत्र में विशिष्ट अर्थ में सुनिश्चित रूप से पारिभाषित होते हैं। अर्थ-और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से परिभाषित होने के कारण ही शब्द पारिभाषिक शब्द कहलाते हैं।

अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से पारिभाषित होने के कारण ही पारिभाषिक कहे जाते हैं।[3] कमल कुमार बोस ने पारिभाषिक शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है-पारिभाषिक शब्द से तात्पर्य उस सारी शब्दाभिव्यक्तियों से है, जो नव्यशास्त्र, प्रशासन, विज्ञान और व्यवहार में विशिष्ट अर्थ के लिए प्रयुक्त होती है। इस प्रकार विषय विशेष में प्रयुक्त होने वाला विशिष्ट शब्द पारिभाषिक शब्द कहलाता है।

डॉ0 सत्यव्रत ने दैनिक जीवन में नये विचार और वस्तुओं के लिए नये शब्दों के आगमन को पारिभाषिक शब्द मानते हैं। पारिभाषिक शब्द का अर्थ है- जिसकी परिभाषा दी जा सके। सामान्य शब्द दैनिक व्यवहार में बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं। जैसे कमरा, घर यात्रा, नदी पहाड़ आदि पारिभाषिक शब्द विषय विशेष में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- खाता, लेखा प्रबंध, लिपिक, वेतन, सचिव गोपनीय आदि। ये शब्द वाणिज्य और प्रशासन के लिए परिभाषिक शब्द हैं।

सामान्यतः पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी के टेकनिकल शब्द का हिन्दी में रूपातंरण है। विदेशी शासन के अंतर्गत इस प्रकार के शब्दों को संग्रहित करने का कार्य शुरू किया गया, परन्तु यह बात मुझे किसी प्रकार से समीचीन प्रतीत नहीं लगता है। भारत में पारिभाषिक शब्दावली की

परम्परा बहुत प्राचीन हैं। क्योंकि कि यहाँ दर्शन, गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, न्याय, मीमांसा, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, संगीत काव्य आदि विषयों का चिंतन प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। इन क्षेत्रों में ज्ञान के विकास के कारण संस्कृत भाषा में इनकी प्रयुक्ति की पारिभाषिक शब्दावली विकसित हो चुकी थी। समयानुसार भाषा में परिवर्तन के सामान्तर पालि, प्राकृत आदि भाषाओं में भी पारिभाषिक शब्दों की अबाध परम्परा जारी रही। मध्यकाल में फारसी राजभाषा बन जाने पर प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में अरबी-फारसी भाषा की पारिभाषिक शब्दवली का प्रसार हुआ, किन्तु उनके साथ पहले से स्थापित ओर बहु-प्रचलित भारतीय भाषाओं की शब्दावली भी बनी रही। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही, प्रशासन, शिक्षा एवं अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होने लगा। आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के क्रम में आरंभ से ही अंग्रेजों ने भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी को अधिक महत्व देने का कार्य किया। यहाँ तक कि भारतीय लोगों ने भी प्रशासकों के प्रभाव में आकर भारतीय भाषाओं के प्रति हीन भावना भावना के शिकार हुए। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस अभियान में अंग्रेज शासक पूरी तरह सफल रहे। और उसी का परिणाम है कि आज इस देश का एक बड़ा शिक्षित वर्ग अंग्रेजी को श्रेष्ट भाषा समझता आया है।

यद्यपि भारत में आधुनिक शिक्षा की स्थापना के आरिम्भक काल से ही यहाँ के लोगों ने हिन्दी की सन् 1885 ई0 में वुड्स एजुकेशन डिस्पेच में माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के माध्यम भाषा बनाये जाने की मांग की, जिसके परिणाम स्वरूप तक मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने का प्रावधान रखा गया था। लेकिन अंग्रेज शासकों ने इस मांग को दर किनार कर लम्बे समय तक भारत को गुलाम बनाये रखने की नीति से अंग्रेजी को ही वरीयता दी।

पारिभाषिक शब्दावली को रचना और मानक भाषा विकसित करने का कार्य भारत में नागरी प्रचारणी सभा (काशी) साहित्य सम्मेलन प्रयाग, बंगाल साहित्य परिषद, गुरूकुल, कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उस्मानियाँ विश्व विद्यालय आदि के द्वारा संभव हुआ है।

आजादी के बाद हिन्दी को संघ की राजभाषा बन जाने के बाद प्रशासन एवं समाजिक व्यवहार में हिन्दी के प्रयोग की बात गम्भीरता से समझी जाने लगी है हिन्दी में समुचित शब्दावली का विकास हो। राष्ट्रपति के अप्रैल 1960 ई0 के आदेश का अनुपालन करते हुए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने 1961 ई0 में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग तथा केन्द्रीय अनुवाद ब्युरों की स्थापना की। उस समय से लगातार ये संस्थायें पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य कर रही है। अब तक लगभग 600 ज्ञान शाखाओं से जुड़े लगभग सात लाख शब्दों तथा चौदह लाख व्युत्पादित शब्दों का निर्माण हो चुका है। विद्वानों के काफी वर्षो तक लगातार मेहनत का परिणाम अब दिखने लगा है। आज हम ये नहीं कह सकते है अमुक विदेशी शब्द के लिए हमारी भाषा में शब्द नहीं हैं। अब शब्दावली निर्माण की दिशा में काफी प्रगति हुई है, फिर भी जरूरत इस बात की है कि उन्हें अधिक से अधिक व्यवहार का माध्यम बनाया जाय।

1. वैज्ञानिक तथा शब्दावली के स्वीकृत निर्माण का सिद्धांतः- अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथा संभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूप में ही अपनाया जाना चाहिए तथा हिन्दी में भाषा प्रकृति के अनुसार-लिप्यंतरण करना चाहिए।

2. प्रतीक रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाये, परन्तु संक्षिप्त नागरी और मानक रूपों में भी लिखे जा सकते हैं विशेषत: साधारण माप-तौल में जैसे सेंटीमीटर का प्रतीक -बउ हिन्दी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा। संक्षिप्त रूप में से0 मी0 हो सकता है।

3. संधि- पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास के कठिन संधियों को यथा संभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए। संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दो के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द रचनाओं को समझने में सहायता मिलेगी।

4. नये अपनाएं हुए शब्दों में आवश्यकतानुतार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

5. पंचम वर्ण का प्रयोग पंचम वर्ग के रूप के स्थान पर अनुस्वार था। प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि सैद्धान्तिक विवेचन में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में भाषाविद् ने सूक्ष्म अन्वेषण तथा विश्लेषण से हिन्दी की परिभाषिक शब्दावली को प्रखर और व्यवहृत स्वरूप में ढालने का स्तुत्य प्रयास किया है। हमें गर्व है कि आज हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली आधुनिक वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है। सहजता, सरलता और बोध गम्यता से यह परिपूर्ण है।

संदर्भ-सूचीः-

1. अंग्रेजी -हिन्दी शब्द कोश डॉ0 हरदेव बाहरी, ज्ञानमंडल लि0 वाराणसी
2. उर्दू हिन्दी शब्द कोश- संयुक्त सम्पादन मुहम्मद सज्जाद उस्मानी एवं सुधीन्द्र कुमार
3. व्गवितक भ्पदकप म्दहसपी क्पबजपवदंतल म्कपजमक इल त्ौण्डण्ब्ंलतमहवत
4. हिन्दी कोश साहित्य-डॉ0 अचलामंद जखमोला
5. हिन्दी शब्दसागर- संपादक- नागरी प्रचारणी सभा
6. भाषा हिन्दी पत्रिकाः- नवीनकोश बनाम प्राचीन कोश डॉ0 पुष्पलता, तनेजा का लेख वर्ष-49 अंक-2 नव दिसम्बर-2009
7. प्रयोजन मूलक हिन्दी-डॉ0 राजनाथ भट्ट (रीडर.बी.एच.यू) हरिसन् अकादमी।
8. वृहत प्रशासन शब्दावली पंचम संस्करण-1996 (वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग।)

प्रो. डॉ. रामस्वरूप भगत, एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री गुरुगोविन्द सिंह महाविद्यालय, पटना सिटी

✧ ✧ ✧

अपने लोग : व्यंग्यार्थ से प्रतिध्वनि बहुसन्दर्भित यथार्थ

गीता शुक्ला

और दूसरा कारण है, गोरखपुर की प्रकृति, जिससे वह बना है .....एक बार वह कई साल तक गाँव नहीं आ सका तो भीतर-भीतर बहुत टूटता हुआ अनुभव करने लगा। पेड़, पौधे, खेत, खलिहान, मौसम, पर्व अपने ढंग से वहाँ के थे, लेकिन उसे लगता था कि वह उन सबके बीच अतृप्त है। वह उस परिवेश में जाना चाहता है, जहाँ की मिट्टी से वह बना है।

अनुभव की व्यापकता और समृद्धि संकीर्णता और दुहराव से बचाती है। कथाकार रामदरश मिश्र का जीवन और साहित्य इसका साक्षात प्रमाण है। व्यापक जीवनानुभव ने जहाँ इनके उपन्यासों और कहानियों को कथ्यात्मक दुहराव से बचाया है, वही संवेदनात्मक धरातल भी संश्लिष्टता से सम्पृक्त होकर अधिक व्यापक और सार्वभौमिक हो उठा है। सामान्य से विशेष और विशेष में सामान्य होने की सर्जनात्मक कुशलता, खण्ड-खण्ड में विभक्त यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में पहचानने और अभिव्यक्ति देने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। वे विशेष देश-काल-परिवेश को सूक्ष्मातिसूक्ष्म साहित्यिक विश्लेषण से सर्वदेशीय बनाने की सहज प्रतिभा रखते है। उनकी सहजता जड़ नहीं प्रगतिशील है जो जमीन से गहरे जुड़कर समय की गति व परिणाम को गहराईयों में डूबकर उभरती है। प्रकाश मनु के शब्दों में "रामदरश मिश्र जी का व्यक्तित्व हो या रचनाएँ, उनकी विशेषता ही यह है कि उनमें बनावट कम से कम है और सहजता ही उसका प्राण है। उनकी हर रचना सीधे-सीधे लेकिन संवेदना में गहरे धँसे आदमी का बयान है।"[1]

'अपने लोग' रामदरश मिश्र का महाकाव्यात्मक उपन्यास है, जो सन् 1976 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें 32 खण्ड हैं। अपने लोग शीर्षक व्यंग्यात्मक है, जो आत्मीय सम्बन्धों की स्वार्थपरता पर कटु व्यंग्य करने के साथ-साथ परायों की आत्मीयता का रागात्मक पक्ष भी उद्घाटित करता है। इस उपन्यास में प्रायः सभी पात्र आपनों की स्वार्थपरता से ठगे

गए है। कुछ पात्र जैसे प्रमोद और बी० लाल, तो इस दिखावटी अपनेपन के प्रति प्रतिहिंसक व विद्रोही हो उठते हैं, किन्तु कुछ पात्र यत्रवत उसमें पिसते रहते हैं, जैसे फुलवा की जान उसका पति ही ले लेता है और डॉ० सूर्यकुमार की पत्नी सिर्फ दिखावटी सम्बन्ध-चिह्न मात्र रह गयी है। आत्मीय सम्बन्ध की यथार्थता को व्यक्त करने में लेखक ने अनेकानेक यथार्थ को भी बड़े ही कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है।

प्रमोद अपने पिता प्रभाशंकर के कहने पर दिल्ली की नौकरी छोड़कर गोरखपुर के शंकर कॉलेज के पद पर नियुक्ति लेता है। उसके गोरखपुर आने के दो कारण है। प्रथम तो पिता का भावपूर्ण आग्रह, जिसमें जायदाद के प्रति चचेरे भाईयों की कुटिलता का भी संकेत है..... तुम्हारे हिस्से की खेतीबारी है, इतनी दूर रहोगे तो कैसे देखभाल कर सकोगे बेटा? लोगों की नीयत बिगड़ते देर नहीं लगती और गाँव के लोग भाईयों को आपस में भिड़ाने में बहुत तेज हैं।....[2]

और दूसरा कारण है, गोरखपुर की प्रकृति, जिससे वह बना है .....एक बार वह कई साल तक गाँव नहीं आ सका तो भीतर-भीतर बहुत टूटता हुआ अनुभव करने लगा। पेड़, पौधे, खेत, खलिहान, मौसम, पर्व अपने ढंग से वहाँ के थे, लेकिन उसे लगता था कि वह उन सबके बीच अतृप्त है। वह उस परिवेश में जाना चाहता है, जहाँ की मिट्टी से वह बना है।

रामदरश मिश्र ने 'अपने लोग' की कथा का विस्तार गोरखपुर और दिल्ली, इन दो सीमान्तों के मध्य की है। प्रमोद दोनों को जोड़ने वाला वह तुलनात्मक माध्यम है, जिसके परिप्रेक्ष्य में गोरखपुर की समग्रता में पूरा देश ही उपस्थित हो गया। डॉ० रामदेव शुक्ल के शब्दों में 'अपने लोग' रामदरश मिश्र की प्रगतिशील दृष्टि की रचनात्मकता का सम्पन्नतर अवदान है। गोरखपुर के माध्यम से पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार अपनी सम्पूर्णता में मूर्त हो उठा है, इस उपन्यास में। और आगे बढ़कर इसे पूरे देश का दर्पण कह सकते हैं, जिनमें पूरे देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और मानवीय चेतना की विसंगतियाँ साफ-साफ उभर आती है।"....[4]

गोरखपुर आवास के दौरान प्रमोद वहाँ की प्रकृति, भौतिक समृद्धि, वहाँ के लोगों और आत्मीय जनों के व्यवहारों का अवलोकन करता है। उसे सर्वत्र परिवर्तन की पदचाप सुनाई पड़ती है। वह अनुभव करता है...." ...लोग अब केवल लोग रह गये हैं.....कुछ-कुछ खाली दूरियों के बाद उगे हुए पेड़ों से लोग। अब बीच की दूरियों में लोगों के फेंके हुए कूड़े सड़ते रहते हैं और एक सड़ी गंध से सारा वातावरण टूटता रहता है।"

प्रमोद के लखनऊ के सहपाठी भूपत सिंह गोरखपुर कचहरी में वकालत करते है। उनका वकीलिया दिमाग मित्रता को भी ठगने से बाज नहीं आता। जब प्रमोद अपने भाई श्याम का मुकदमा लेकर उनके पास जाता है तो उनके पेशेवर व्यवहार को देखकर सोचता है-"क्या यह पेशा आदमी को इतना जलील बना देता है? कहाँ तो वह एक मित्र की हैसियत से इससे राय माँगने आया था, कहाँ इसने अपने पेशे का निहायत ओछापन दिखाते हुए पच्चीस रुपये उस पर जड़ दिये।"[6]

इसी तरह शिवनाथ वर्मा, जो अब एम०एल०ए० हो गये हैं, उसकी मित्रता को राजनीतिक स्वार्थसिद्धि का साधन बनाना चाहते हैं। वे कॉलेज की समस्या को राजनीतिक रूप देने में प्रमोद की मदद चाहते हैं। पर प्रमोद उसकी कुटिलता भाँप कर मना कर देता है। प्रमोद के चचेरे भाई रमेश और श्याम, फुफेरे भाई सज्जन भी मौके-बेमौके उससे स्वार्थसिद्ध करने पहुँचे

रहते हैं। अपने लोग के नाम पर प्रमोद कई बार इन लोगों द्वारा छला जाता है, किन्तु आजिज आकर अन्ततः वह कह ही देता है – तुम लोग बहुत चालाक हो। तुम लोगों ने मेरी शराफत को कमजोरी समझा और चालाकी से मेरा और मेरी पत्नी का खून चूसते रहे, किन्तु अब यह नहीं चलेगा।"[7]

पर लेखक निषेध की क्षतिपूर्ति, विधेय की कलात्मक परिकल्पना के द्वारा सर्वजन हिताय, शुभ व सुन्दर यथार्थ के रूप में करता है। वह जानता है, सम्बन्ध मनुष्यता के मानदण्ड है, मानवता के मूल्य है, व्यक्तित्व निर्माण के अभिन्न अंग है। इसलिए लेखक ने अपनों के पद पर परायों को बड़ी ही संवेदनात्मक जीवन्तता के साथ प्रतिस्थापित करके प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रमोद पागल उमेश के प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है। विलास की नौकरी सम्बन्धी समस्या को सुलझाने के लिए पूर्ण प्रयास करता है, यद्यपि वह सफल नहीं होता। फुलवा से उसे आत्मीयता है। उसके इलाज के लिए वह पैसे भी देता है। पर वह मर जाती है। यह देखकर वह तड़प उठता है, रोने लगता है।

डॉ0 महावीर चौहान के शब्दों में :

मानव जाति को हर स्तर पर शोषण, दमन, अन्याय तथा अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए प्रमोद की सक्रियता व्यवहार के स्तर पर भले कुछ कम हो, लेकिन रचना के स्तर पर वह आन्तरिक ऊर्जा और जागरूकता के साथ जुड़ा रहता है।"[8]

वस्तुतः प्रमोद साहित्यकार है। साहित्या प्रत्यक्षतः राजनीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जैसा कि रामदरश मिश्र जी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा भी है "....आज का नेता साहित्य के मामले अनपढ़ होता है। इसलिए अगर साहित्य रास्ता दिखाये भी तो वह रास्ता नहीं देखेगा।..... साहित्य और राजनीति में जो सम्बन्ध था, वह टूट गया है। इसलिए साहित्य राजनीति को मार्ग नहीं दिखा सकता।"[9]

पर प्रमोद अपने बेटे पवन के माध्यम से युवा पीढ़ी के प्रति विश्वास दिखाते हुए कहता है कि नेताओं, अफसरों, व्यापारियों के मिले-जुले षड्यंत्र से यहाँ की मिट्टी मिट्टी से, पानी पानी से, हवा हवा से लड़ती है और टूट-टूटकर बिखरती रहती है, रोती है, पछाड़ खाती है, लेकिन कोई नहीं सुनता ..... मैं सक्रिय संघर्ष नहीं कर सकता, यह मेरी सीमा है। इसलिए वह चाह लिए मैं बराबर तड़पता रहा हूँ। वह चाह तुम्हारे माध्यम से अभिव्यक्ति पा ले तो मुझे परम तृप्ति होगी।"[10]

गोरखपुर का जीवन राजनीतिक प्रभाव से विद्रूपित है। लेखक ने सर्जनात्मक कुशलता से राजनीतिक यथार्थ को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ वर्तमान और सम्भावित भविष्य तक विस्तारित कर दिया है। वंशीधर, जमींदारी के वैभवान्त की गाथा है तो उद्योगपति मंगल सिंह पूँजीवादी शक्ति के विस्तार के सूचक हैं, जिसके गरल से मानवता मृतप्राय हो रही है। डॉ० सूर्य फुलवा की जमीन पर फलते-फूलते शोषक-वर्ग का समग्र यथार्थत्मक बिम्ब है, जो राजनीति की अमोध शक्ति और शह पाकर निरन्तर सम्पन्नता को प्राप्त कर रहे हैं।

सैद्धान्तिक रूप से तो गोरखपुर के विकास के लिए कांग्रेस, जनसंघ, मार्क्सवाद जैसी राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक पार्टियाँ हैं, एवं इनकी बहुद्देशीय विकास परियोजनाएँ भी हैं। पर व्यवहारिक रूप से तो सर्वत्र मोहभंग की पीड़ा ही व्याप्त है।

वस्तुतः दोष राजनीति में नहीं, अपितु स्वार्थपूर्ण राजनीति में है। इसलिए लेखक ने

राजनीति का पूर्णत: तिरस्कार न करते हुए व्यावहारिक समाजवाद में निष्ठा व्यक्त की है, जो प्रमोद के इस कथन से स्पष्ट है "मैं यह भी मानता हूँ कि गरीबी के विरुद्ध यह लड़ाई केवल समाजवादी तरीके से लड़ी जा सकती है, लेकिन केवल किताबी समाजवादी यह लड़ाई नहीं लड़ सकते।.... इसके लिए जनता के बीच जाना होगा, उसे समझना होगा, उसके दु:ख-दर्द को समझकर उसकी शक्ति और समझ जगानी होगी, उसे संघटित करना होगा, लक्ष्य को स्पष्ट देखना और दिखाना होगा।"[11]

डॉ० नित्यानन्द तिवारी के शब्दों में - "यह उपन्यास राजनीति से अलग मानवीय अनुभवों को ग्रहण नहीं करता। मानवीय अनुशासन में राजनीति को ग्रहण करता है।"[12]

राजनीति के साथ-साथ सामाजिक अन्तर्विरोधों का यथार्थ भी लेखक ने बी० लाल के चरित्र से अभिव्यन्जित किया है। बी० लाल सामाजिक अन्तर्विरोध के उस बिन्दु पर खड़ा पात्र है, जहाँ नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न ही हास्यास्पद बन जाता है। माँ कलावती के साथ लोगों के अवैध सम्बन्ध उसे प्रति हिंसक बना देते हैं। वह सम्पूर्ण सामाजिक-व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करने में तृप्ति पाना चाहता है। वह चाहता है किसी अच्छे घर की लड़की को बर्बाद करना, ताकि उसकी प्रति हिंसा पूरी हो सके।"[13]

पर बी० लाल के चरित्र का दूसरा पक्ष भी है, जो विधेयात्मक और भविष्य गायी सकारात्मक संभावनाओं से युक्त है। वह परोपकारी और अन्याय विरोधी है। वह पागल उमेश को खाना खिलाता है, एक छोटे बच्चे को चोरी के मिथ्यारोप में पिटते देख उसकी रक्षा करता है। पवन और उसकी दोस्ती में युवा पीढ़ी का प्रगतिशील व आशान्वित पक्ष इंगित होता है। बी० लाल की बड़ाई करते हुए पवन, रामजन्म दूबे के आरोपों का खण्डन इन शब्दों में करता है-"..... वह यदि लोफर है, तो बड़े-बड़े उपकार भी करता है।"[14] बी० लाल का इसाई लड़की मंजरी से विवाह करने का प्रयास अन्तर्जातीय विवाह के रूप में भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में बड़े बदलाव की सूचना देते हैं। डॉ० नित्यानन्द तिवारी के शब्दों में, "वह सामाजिक अंतर्विरोधों का ऐसा अपेक्षित गुरुत्व केन्द्र है, जहाँ सामाजिक बुराईयाँ और नयी सामाजिक सम्भावनाएँ अपनी पूरी ताकत से एक-दूसरे के विरोध में स्वयंमेव उभरती है।"[15]

'अपने लोग' उपन्यास में लेखक ने विलास और उमेश को, शिक्षा और प्रतिभा के प्रति समाज और राजनीति की स्वार्थी और पूँजीवादी कुनीति के प्रतिपक्ष में प्रतिबिम्बित किया है। विलास शिक्षित होकर भी नौकरी का स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सका और उमेश अपनी प्रतिभा का अनादर न बर्दाश्त कर सका, जिसका दुष्परिणाम पागलपन के रूप में उपन्यास में आद्योपान्त ध्वनित होता रहता है। पर इस पागलपन का बड़ा ही श्लाघ्य सदुपयोग लेखक ने किया है। उमेश का पागलपन जन सामान्य की उस सत्यता का उद्घोषक है, जिसे समाज और देश के बुद्धिमान व विवेकी लोगी तुच्छ स्वार्थ के नीचे दफन कर देना चाहते हैं। उमेश का यह कथन – "भागो भाईयों, समाजवाद का जुलूस आ रहा है। मैं शहर की आत्मा हूँ, प्यासा हूँ, ...।"[16] - यथार्थ का कितना व्यापक व्यंग्यात्मक बिम्ब उभारता है। उमेश खुद को सर्वव्यापी बताकर, अपने पागलपन के पीछे जिम्मेदार व्यवस्था की क्रूरता का सार्वभौमिक संवेदनात्मक एवं संश्लिष्ट बिम्ब पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। मानों वह पागल नहीं, बल्कि उसे पागल कहने वाले सारे लोग पागल हैं, जो अपनी कमियों को नहीं देख पाते और मनुष्यता के गौरव को कलंकित कर रहे हैं।

रामदरश मिश्र ने उपन्यास में प्रसंगवश आधुनिक शिक्षा की निरर्थकता और सांस्कृतिक एवं धार्मिक पतन को भी इंगित किया है। प्रमोद का दूधवाला जब कहता है – "गऊ किरिया सरकार, जवानी कसम बाबू जी, जो मैं दूध में पानी मिलाता होऊँ।[17]

तो प्रमोद सोचता है "……गऊ की झूठी शपथ खा रहा है और इसी गौ के नाम पर इनका साम्प्रदायिक उन्माद भी जाग जाता है..... गाय, गंगा-जल, गीता, रामायण, सबकी निस्सारता जैसे इनकी समझ में आ गयी है। तभी तो धर्म के नाम पर उनकी रट लगाते हुए भी स्वार्थ के समय उनकी झूठी कसमें खा जाते हैं।"[18]

अर्थवत्ता खोती शिक्षा की वास्तविकता प्रमोद के इस कथन में द्रष्टव्य है–"मैं जानता हूँ, मेरे बच्चे की आज की पढ़ाई-लिखाई अर्थहीन हो गयी है। वह न तो भीतरी समृद्धि दे पाती है और न जीने लायक बाहरी समृद्धि की 'श्योरिटी' ही।"[19]

इसी प्रकार स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा का प्रतिरोधात्मक स्वर भी उपन्यास में उद्‌भासित होता रहता है। प्रमोद का यह कथन यथार्थ का अभिव्यंजक है–"अपने को प्रगतिशील मार्क्सिस्ट कहने वाले इधर के नेता, साहित्यकार, अफसर, वकील, बैरिस्टर अपने घरों की औरतों को इस तरह कैद रखते हैं कि मानों वे औरतें नहीं हैं, सामान हैं....."[20]

डॉ० रामदरश मिश्र सर्वत्र एक संतुलित दृष्टि रखते हैं। इसीलिए प्रमोद की पत्नी संज्ञा में वे यदि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का आदर्शवादी स्त्रीत्व सुरक्षित रखते हैं तो मंजरी के रूप में आधुनिक स्त्रियों का प्रगतिशील व यथार्थवादी रूप भी सृजित करते हैं। वे जमीन से जुड़कर विकास की परिकल्पना करने वाले लेखक है। इसी का शुभ परिणाम है कि 'अपने लोग' उपन्यास में आदर्श की जमीन से जुड़कर ही प्रगतिशील यथार्थवादी विचारधारा आप्लावित है। भूत, वर्तमान और भविष्य में अद्‌भुत तारतम्यता है, जो बहुसन्दर्भित यथार्थ को सांगोपांग व्यंजित करने में सार्थक सिद्ध हुआ है। रामदरश मिश्र के गुरू आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रशस्ति-पत्र की ये पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

"गोरखपुर को बहाना बनाकर तुमने इस समूचे पूर्वांचल को जीवित रूप में चित्रित कर दिया है। इसके पात्र बिल्कुल परिचित जान पड़ते हैं। यथार्थवादी दृष्टि से इसके प्रत्येक पक्ष को देखा गया है, फिर भी सहानुभूति, सम्वेदना सर्वत्र विद्यमान है.....।"[21]

सन्दर्भ सूची

1. 'रामदरश मिश्र : एक अन्तर्यात्रा' प्रकाश मनु, पृष्ठ सं० 10, 2. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-6 'अपने लोग' सं० रामदरश मिश्र व स्मिता मिश्र, पृष्ठ सं० 78, 3. वही, पृष्ठ सं० 78, 4. 'उपन्यासकार रामदरश मिश्र', डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ व डॉ० प्रेमकुमार, पृष्ठ सं० 58, 5. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-6, 'अपने लोग' सं० रामदरश मिश्र व स्मिता मिश्र, पृष्ठ सं० 80, 6. वही, पृष्ठ सं० 309, 7. वही, पृष्ठ सं० 354, 8. 'रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा', डॉ० महावीर सिंह चौहान, पृष्ठ सं० 101, 9. यथावत पत्रिका, 1-16 मार्च 2016 I, 10. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-6, 'अपने लोग' सं० रामदरश मिश्र व स्मिता मिश्र, पृष्ठ सं० 306, 11. वही, पृष्ठ सं० 306, 12. 'रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति' सं० जगन सिंह व स्मिता मिश्रा, पृष्ठ सं० 313, 13. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-6, 'अपने लोग' सं० रामदरश मिश्र व स्मिता मिश्र, पृष्ठ सं० 124, 14. वही, पृष्ठ सं० 304, 15.'रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति' सं० जगन सिंह व स्मिता मिश्रा, पृष्ठ सं० 312, 16. रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-6, 'अपने लोग' सं० रामदरश मिश्र व स्मिता मिश्र, पृष्ठ सं० 358, 17. वही, पृष्ठ सं० 160, 18.वही, पृष्ठ सं० 16, 19. वही, पृष्ठ सं० 305, 20. वही, पृष्ठ सं० 222, 21. 'रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति', सं० जगन सिंह व स्मिता मिश्रा, पृष्ठ सं० 309

गीता शुक्ला, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना मध्य प्रदेश, मो0 नं0 : 8574970333

हिन्दी मीडिया : परिवर्तन एवं परिदृश्य का पुनरावलोकन

राम प्रकाश द्विवेदी

शनिवार आया और मैंने न केवल उनकी प्रतीक्षा आरंभ की, वरन् उनके सत्कार के लिए सामान लाने के संदर्भ में बाजार के चार चक्कर भी काटे। और फिर मैं बैठ गया पूरी तरह से प्रतीक्षा करने। मुझे प्रतीक्षा का रोग है। उसके साथ मैं और कोई काम नहीं कर सकता। किंतु उनका आने का तो कोई समय ही नहीं था।

विगत दिनों अमेरिकी राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप का ट्विटर अकाउंट उनके ही एक कर्मचारी ने अपने रिटायरमेंट के अंतिम दिन डीएक्टीवेट कर दिया। राष्ट्रपति ट्रंप का यह अकाउंट लगभग ग्यारह मिनट तक बंद रहा और अंतरराष्ट्रीय चर्चा का विषय बना। प्रसिद्ध पत्रकार मृणाल पांडे ने दिनांक 17 सितंबर, 2017 के अपने एक ट्ववीट में लिखा– रुजुमला जयंती पर आनंदित, पुलकित, रोमांचित वैशाखनंदन साथ में एक खच्चर की फोटो भी नत्थी थी। लगभग सात शब्दों वाला यह कथन अपने संदर्भ के चलते व्यापक विवाद का हिस्सा बन गया। यह वाक्य निश्चित तौर पर दो संदर्भ लिए हुए है। पहला वर्तमान भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का और दूसरा स्वयं लेखिका का। भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी अपनी वकृता के लिए जितने प्रसिद्ध है उतने जमीनी परिणामों के लिए नहीं। विपक्ष लगातार यह आरोप उन पर लगाता आया है कि वे जितना बोलते हैं, उतना कर नहीं पाते। यह निराशा मृणाल जी के ट्ववीट में झलकती है और चित्र उसकी व्यंगात्मकता की धार को और भी तेज कर देता है। आज से पहले मात्र सात शब्दों का कथन इतना विवाद पैदा करने में समर्थ न था। स्वयं मृणाल पांडे जैसी वरीय पत्रकार से लोग विरोध की ऐसी भाषा की अपेक्षा नहीं कर रहे थे। यह मीडिया का बदला हुआ परिदृश्य है।

मीडिया आज एक व्यापक अर्थ में

प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है। हिंदी के आधुनिक काल की शुरुआत में पत्रकारिता शब्द सर्वमान्य था। तब तकनीक के रूप में केवल मुद्रण प्रणाली की उपलब्धता थी। पत्रकारिता के लिए चार बिंदु सबसे महत्वपूर्ण थे–भाषा की गद्यात्मकता, विचार या सूचना की उपलब्धता, सम्प्रेषण की तकनीक एवं उसका पाठक समूह। हिंदी के गद्य रूप के विकास में अनेक कारण रहें, जिसमें तत्कालीन ब्रिटिश सत्ता की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अब रॉबिन जेपी के एक उद्धरण लीजिए, जो आंध्र प्रदेश से निकलने वाली तेलगु पत्रिका 'स्वाति' का सन्दर्भ लिए हुए है. रॉबिन जेपी जब आन्ध्र प्रदेश के कोडप्पा रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो एक पुलिस वाला 'स्वाति' के पुराने अंक को मुँह ढके सो रहा था. जब वह उठा तो जेपी ने बातचीत का सिलसिला शुरू किया. पुलिस वाले ने कहा।

अखबारों ने पुलिस का काम मुश्किल कर दिया है, क्यों के जवाब में वह कहता है कि – एक समय था जब कोई पुलिसवाला किसी गाँव में जाता था तो लोग थर्रा उठते थे। अब तो छह पुलिस वाले भी गाँव में चले जाएँ तो उनसे कोई भी नहीं डरता। अखबारों ने उन्हें यह अहसास करा दिया है कि पुलिसवालों को उन्हें मारने का कोई हक नहीं। क्योंकि वह मानता था निस्सन्देह मारपीट ही तो अंतिम उपाय है।

रॉबिन जेपी, भारत की समाचार पत्र क्रांति, भारतीय जनसंचार संस्थान, पृ. 2।

अब एक दूसरा उद्धारण

सन् 47 के पहले की पत्रकारिता जिस तरह सामाजिक सुधार, आधुनिकीकरण, स्वाधीनता आन्दोलन, राष्ट्रीय एकता और साधारण किसान मजदूर वर्ग के हितों की लड़ाई का अंग बनी, उसने अपने स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ–साथ सामाजिक सरोकारों को भी लगातार विस्तृत किया, '47 के बाद की पत्रकारिता, उस तरह का अपना कोई इतिहास खड़ा न कर सकी। वह क्षणजीवी हो गयी। नए दौर में उसके स्वतंत्रता के संघर्ष के पीछे न कोई व्यापक तिहासिक चेतना है न किसी तरह की उत्सर्ग भावना।

शंभुनाथ, आलोचना, अप्रैल जून 1987, पृ. 37

अखबरों की कबडी रोज दिखती है। खबर में से खबर, महाखबर या फिर महान खबर कैसे निकाली बनायी पकाई जाय, इसके लिए दिमागी दंगल होते हैं। लेकिन मीडिया का काम सिर्फ सूचना देना, शिक्षित करना या मनोरंजन की थाल मेज पर सजा देना भर नहीं है। वह दौड़ रहा है। दौड़ते हुए पीछे मुड़–मुड़कर देख भी रहा है कि पीछे वाला कहीं आगे तो नहीं निकल रहा। यह दौड़ टीआरपी की है। यहाँ मुठ्ठी भर दर्शक हर शुक्रवार फैसला सुनाता है कि उसे क्या भाया, क्या नहीं – वर्तिका नन्दा, टेलीविजन और क्राइम रिपोर्टिंग, राजकमल प्रकाशन, 2010, मृणाल पांडे, रॉबिन जेपी, शंभुनाथ और वर्तिका नन्दा के उपरोक्त कथन मीडिया में आए विभिन्न पड़ावों के संकेतक हैं। लेकिन, इससे भी ज्यादा ये कथन मीडिया के प्रति हमारे नजरिए, सोच और संबोधन को

रेखांकित करते हैं।

वर्तिका नन्दा का कथन जेपी की नागरिक सशक्तिकरण को मीडिया की भूमिका से आगे बढ़ता है और दिखाता है कि मीडिया की लीला भूमि उसका प्लेग्राउंड क्या है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि', का नायक सूरदास दुनियावी गतिविधियों को 'खेल' की संज्ञा देता है और जीवन की जय पराजय को क्रीड़ा के एक परिणाम की तरह स्वीकारने पर जोर देता है। वर्तिका नन्दा भी मीडिया को एक खेल में शामिल मानती हैं जहाँ टीआरपी के तय शुदा ट्रैक पर दौड़ना होता है। समाज सुधार, स्वाधीनता के मूल्य, राष्ट्रीय एकता किस मजदूरे हितों की लड़ाई के बरक्स अपराध, सेक्स, क्रिकेट, फिल्म, धर्म और राजनीति की केन्द्रीयता आज के मीडिया का मुख्य सरोकार बन उठा है। मीडिया संवेदना का निर्माण नहीं अपितु हर गम्भीर मुद्दे को खेल की तरह एक फिल्मी दृश्य की तरह प्रस्तुत करने की दिशा में उद्धत है। इस बदलते परिदृश्य को जानना जरूरी है।

रॉबिन जेपी और शंभुनाथ के ये विचार प्रेमचन्द परवर्ती पत्रकारिता पर लगभग विरोधी एवं वास्तविक टिप्पणियाँ हैं। रॉबिन जेपी जहाँ समकालीन पत्रकारिता को शोषण से मुक्ति का औजार बता रहे हैं जिसमें पुलिस और प्रशासन तंत्र की मनमर्जी पर अंकुश लगा है, वहीं, शंभुनाथ जी को आज की पत्रकारिता, 'क्षणजीवी', 'तिहासिक चेतना' शून्य और 'उत्सर्ग भावना' दिखाई देती है। इन्हीं विरोधी सोचों एवं मूल्याकंन स्थितियों के बीच मैं अपना विचार सूत्र प्रस्तावित करना चाहता हूँ जिससे प्रेमचन्द और उनकी परवर्ती पत्रकारिता से संश्लिष्ट बिन्दुओं को समझा जा सके।

उपरोक्त दोनों विद्वानों की टिप्पणियाँ विरोधी होते हुए भी उनमें अपने-अपने ढंग से सत्य की आँच छिपी हुई है। शंभुनाथ जी को प्रेमचन्द परवर्ती पत्रकारिता के प्रति बनी समझ बौद्धिक अकादमिक नजरिए का प्रतिफल है और रॉबिन जेपी सर्वेक्षक की तरह तथ्यों को ढूँढ़ते, आँकड़ों का विश्लेषण करते तथा लोक अनुभव को संचित करते अपने निष्कर्ष पर पहुँचते है। शंभुनाथ जी हिन्दी पत्रकारिता पर विचार करते हुए एक 'इंसाइडर' की तरह सोचते हैं और रॉबिन जेपी भारतीय समाचारपत्रों पर विचार, बिल्कुल 'आउटसाइडर' की तरह करते हैं। हिन्दी पत्रकारिता को 'महत परंपरा' और स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान की बंदिशों का प्रतिवाद, साम्राज्यवादी ताकतों के विरूद्ध उसका संघर्ष, सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति उसका तेवर और भंगिमा जिसमें भाषाई भंगिमा भी शामिल है 'इनसाइडर' होने के नाते शंभुनाथ की चिंता और सरोकार इन्हीं मुद्दों के इर्द-गिर्द घूमते हैं, आस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर रॉबिन जेपी के सामने एक 'लघु परम्परा' मौजूद है जिसमें लोकल समाचार पत्र और स्थानीयता केन्द्र में है। वरन भारत की अन्य भाषाई पत्रकारिता भी। 'राष्ट्रभाषा' हिन्दी के दायित्व और जिम्मेदारियाँ भी बड़ी है, राष्ट्रीय है, अन्य भाषाएँ तो इनसे मुक्त भी हो सकती है वे स्थानीय किस्म की जवाबदेही का भार उठाएँ यही बहुत है। इसीलिए, प्रेमचन्द परवर्ती पत्रकारिता पर मंथन करते हुए शंभुनाथ जी का रोमानी, आवेगधर्मी होना स्वाभाविक है उनके शब्दों 'क्षणजीवी'। 'णतिहासिक चेतना' और 'उत्सर्ग भावना' हित पर ध्यान दीजिए रॉबिन जेपी चाहकर भी न कर सकते थे। जेपी के लिए भारतीय

भाक्षाई प्रेस के इस विस्फोटक युग में विज्ञापन, पूँजी प्रोद्योगिकी की भूमिका का विश्लेषण और भारतीय समाचार पत्रों के स्वामित्व, पत्रकारों की भर्ती और उनकी आजीविका, प्रेस को निर्यंत्रित करने वाली शक्तियों के संदर्भ में न केवल बौद्धिक- अकादमिक बहस चलाना था वरन् उनका तथ्य परक वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए एक ठोस निष्कर्ष तक पहुँचाना था। हाँ ऐसा करते हुए उन्होंने लोकसंवेदना को भी उतनी ही तवज्जों दी है जितनी कि अन्य अवयवों को. समकालीन परिदृश्य में हम प्रेमचन्द और परवर्ती पत्रकारिता पर उपरोक्त दोनों ढ़ंग से सोच सकते हैं- एक इनसाइडर बौद्धिक उत्सर्ग भावना की तलाश करते हुए और एक आउटसाइडर वैज्ञानिक, तथ्यपरक, प्रोफेशनल और लोक प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए। मैं खुद को जेपी के अधिक करीब पाता हूँ, इसलिए प्रेमचन्द और परवर्ती पत्रकारिता के संदर्भ में मेरी स्थापनाएँ आउटसाइडर की तरह होगी. जो प्रेमचन्द के भक्तों के लिए परेशानी का सबब बन सकती हैं लेकिन, उनके अध्येयता और आलोचक से एक तार्किक संवाद और बहस कायम करें। आखिरकार, कोई भी स्थापना अंतिम नहीं होती।

कहा जाता है कि प्रेमचन्द फिल्म नगरी के जमने गए थे, लेकिन, वहाँ उनका मन नहीं लगा वे वापस लौट आए। मेरे मन में प्रश्न उठता है यदि प्रेमचन्द आज होते तो पत्रकारिता करते या नहीं? इस पेशे से उनका तालमेल कैसे बैठता? सन् '30 के 'विशाल भारत' में उनकी एक घोषणा इस सिलसिले में द्रष्टव्य है। उन्होंने लिखा था। मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम में सफल हो। मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नहीं हूँ। खाने को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो- चार उच्च कोटि की रचनाएँ छोड़ जाऊँय लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतत्रता प्राप्ति ही हो प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृ0 122 पर पुनर्उद्धत। अपने वर्तमान परिदृश्य पर नजर डालिए खासतौर से पत्रकारिता जगत के दौलत, शोहरत की कामना से रहित और मोटर व बंगले की हविस न रखने वाले कितने पत्रकार विख्यात या स्ट्रिंगर आपके जेहन में आते हैं' तो मैं अपना प्रश्न दोहरा सकता हूँ कि प्रेमचद्न आज पत्रकारिता करते या नहीं? इस पर सोचिए। प्रेमचन्द ने अपने उपरोक्त वक्तव्य में अपनी अभिलाषाओं को 'बहुत सीमित' और 'सबसे बड़ी' कहा है। यह सीमित और बड़ी अभिलाषा है स्वाधीनता प्राप्ति। हम अपने आज के समय को असीमित और छोटी, क्षुद्र अभिलाषाओं का समय कह सकते है। हमारा युग सूचना के विस्फोट का ही युग नहीं वरन् हमारी अभिलाषाओं के विस्फोट का भी युग है। तो क्या प्रेमचन्द पत्रकारिता के सबसे प्रभावशील क्षेत्र को अस्पृश्य मानकर अपनी साहित्यिक दुनिया में वैसे ही लौट जाते जैसे वे फिल्म नगरी को छोड़कर आ गए थे। अगर वे ऐसा करते तो सबसे अनर्थकारी बात होती और शायद, प्रेमचंद ण्सा करते भी नहीं। तब वे पत्रकारिता जरूर कर रहे होते पर वैसी नहीं जैसी 'हंस', 'जागरण', और 'माधुरी', में दिखाई देती है। उनके ऊपर पूँजी, विज्ञापन, तकनीक और भूमंडलीकरण से उपजी शक्तियों के अनंत दबाव होते। फिर भी, इनके बीच ही, वे जनता और अवाम की लड़ाई को अंजाम दे रहे प्रशासन और पुलिस की धौंसपट्टी का प्रखर विरोध कर रहे

होते और सरकारी तंत्र उनसे वैसे ही दुरूखी होता जैसे रॉबिन जेपी का मुलकाती पुलिस वाला और संग्राम में उनकी सहायता पूँजी भी करती, विज्ञापन और तकनीक भी और संभवतः भूमंडलीकरण से पैदा हुई नवीन ऊर्जा भी।

प्रेमचन्द का युग सीधी मुठभेड़ों का युग था। सत्य, असत्य, नैतिक, अनैतिक, मूल्य और मूल्यहीनता की कसौटियाँ बिल्कुल साफ सी थी। इस संघर्ष में शहादत वांछनीय स्थिति थी जैसे मध्ययुग में आत्मा का परमात्मा में विगलन। सूरदास (रंगभूमि) उस युग का केन्द्रीय पात्र है। साम्राज्यवाद और प्रथानुगामी शक्तियाँ तथा उनके प्रतिरोधी स्वर साफ थे। अब स्थिति वैसी नहीं है। साम्राज्यवाद और साम्प्रदायिक शक्तियाँ 'प्लास्टिक सर्जरी' करा कर मानवतावादी और साधु वेश के मुखौटे में उपस्थित हुई हैं। इसलिए प्रेमचंदकालीन पत्रकारिता के टूल आज के संघर्षों के लिए भोंथरे ही साबित होते। इसलिए पत्रकारों को नए औजार तलाशने पड़े हैं। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है, जो अचानक अपने विद्यार्थियों के प्रश्नों को सुलझाते हुए मेरे दिमाग में आया। जार्ज बुश की वर्तमान भारत यात्रा में महत्वपूर्ण समझौते होते रहे, अंतर्राष्टीय महत्त्व की बैठके भी। मीडिया ने इनकी खूब चर्चा की। आम जनता के लिए इन समझौतों बैठकोंध सन्धियों का मतलब लगा पाना कठिन था। देश की वामपंथी पार्टियों ने दोनों देशों की सरकारों से इनके स्प्ष्टीकरण की माँग की। भारत के सिलसिले में अमेरिकी घोषणाएँ अक्सर छ्लपूर्ण होती हैं। इसे देश का बुद्धिजीवी, पत्रकार, राजनेता और आम आदमी सब जानते महसूसते हैं। इसलिए 'महत्वपूर्ण गतिविधियों' के समानांतर एक दूसरी खबर भी मीडिया लगातार चलाता रहा वह थी।

बुश साहब के कुत्तों की। कुत्तों की खबरों बॉक्स में छपती रही। बुश की इस यात्रा के दौरान मैंने अपने पड़ोस, विद्यार्थियों और शिक्षक साथियों के बीच महत्त्वपूर्ण संधियों की चर्चा कम और उनके कुत्तों से संबंधित चर्चा अधिक सुनी। भारतीय मीडिया ने बुश की यात्रा की 'सीरियसनेस' और 'इम्पॉर्टेस' को अपनी दूसरी खबर से 'डायलूट' कर दिया। मीडिया का यह तरीका बुश साहब की छवि एवं उनके महिमा मंडन में जुटी सरकार मशीनरी पर कालिख पोतने जैसा है। दुनिया के सबसे ताकतवर व्यक्ति की चर्चा उतनी भी न हुई जितनी उसके कुत्तों की। आज की पत्रकारिता ने अपने औजार ज्यादा पैने बनाए हैं शहादत की उसके लिए एकमात्र विकल्प नहीं बचा है। बुश सरकार हैदराबाद भी आए थे। हल वैगरह उठाते उनकी छवियाँ दिखी थी लेकिन उनके कुत्तों की चर्चा यहाँ भी थी या नहीं, अगर आपमें से कोई बताए तो मैं उसका आभारी रहूँगा। अपनी बात को और स्पष्ट करने के लिए में अपने एक पत्रकार मित्र का हवाला देना चाहूँगा। अयोध्या चलने का आहवान करने वाली एक जनसभा हो रही थी। मेरे मित्र चाहते थे कि अखबार में इनकी रिपोर्टिंग न हो लेकिन मालिकों तथा संपादक का दबाव था पूरी कवरेज का। मित्र को चार कॉलम में खबर छापने का निर्देश हुआ। इस खबर को कैसे डायलूट किया जाए इसका नायाब तरीका उन्होंने ढूँढ़ निकाला। खबर के ठीक बीचों-बीच उन्होंने 'बॉक्स' में 'हनुमान भी पीछे नहीं' की खबर शीर्षकों से छाप दी। इस पूरी खबर का है यह हुआ कि नेताओं के वक्तव्य, आहवान की

गम्भीरता जनसभा का औचित्य खबर में धूमिल हो गया और बन्दरों की खबर मुख्य स्थान पर आ चर्चा का विषय बन गयी। मालिक भी प्रसन्न थे। नेता भी और हमारे पत्रकार मित्र थी। कुछ ऐसी ही उक्तियों, और मीडिया कौशल के साथ प्रेमचन्द परवर्ती पत्रकारिता में उत्सर्ग भावना के बिना भी अनेक दबावों के मध्य जनसंघर्षों को जारी रखने का गुर हासिल कर लिया है।

प्रेमचन्द और गाँधी युग गद्य भाषा की शक्ति के विकास का युग था। वह भाषा जिसकी तलाश भारतेन्दु ने शुरू की थी वह प्रेमचन्द के यहाँ अपने प्रांजल रूप में उपस्थित होती है। प्रेमचन्द युगीन पत्रकारिता अपनी संचारात्मक क्षमता के लिए साहित्य पर आश्रित है। इसलिए उस युग की पत्रकारिता साहित्यिक पत्रकारिता ही प्रथमतः है और अन्य विषय राजनीति, समाज चिंतन, अर्थशास्त्र, इतिहास इत्यादि आदि को भी साहित्यिक शिल्प में ही ढलना पड़ता है। परवर्ती पत्रकारिता में दो दिशाएँ बिल्कुल साफ दिखाई देती हैं (क) साहित्यिक पत्रकारिता (ख) गैर साहित्यिक पत्रकारिता। साहित्यिक पत्रकारिता जो प्रेमचंददीय परम्परा का विस्तार थी बौद्धिक, विद्वानों, विचारकों और विश्वविद्यालयों तक सीमित हो गयी, उसमें अभी भी मिशनरी अनुगूँजे मौजूद हैं। उसमें उठाए गए मुद्दे और विचार अभी, भी दीर्घजीवी है लेकिन भ्रष्टाचार से लड़ने, मूलभूत सुविधाओं बिजली, पानी, सड़क की उपलब्धता सुनिश्चित करने, राजनीति और साम्प्रदायिकता पर अंकुश रखने, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण करने, अवाम को स्वस्थ रहने की तजवीने बताने, और जनसामान्य की चेतना को निर्मित करने में इनकी भूमिका नगण्य है। इस दिशा में व्यवसायिक और गैर साहित्यिक पत्रकारिता ही सक्रिय है। प्रेमचन्द ने अपनी पत्रकारिता में वे सभी मुद्दे उठाए थे जो आज की व्यवसायिक पत्रकारिता कर रही है। मेरा अपना अनुमान है कि वे आज के 'हंस' साथ जुड़ने के बजाए स्व. राजेन्द्र माथुर, की तरह 'नवभारत टाइम्स', प्रभाष जोशी, की तरह 'जनसत्ता' या मृणाल पाण्डे की तरह 'दैनिक हिन्दुस्तान' और चाहे तो कह सकते है कि नामवर जी की तरह 'राष्ट्रीय सहारा' से समबद्ध होना अधिक पसंद करते। ये सभी साहित्यधर्मी लोग हैं जो गैर साहित्यिक पत्रकारिता से जुड़े हैं। अपनी संचारात्मक क्षमता के चलते व्यवसायिक पत्रकारिता का वर्चस्व और वैभव समाज में स्थापित हुआ है। यह संचारात्मक क्षमता उसे केवल विचारों से अर्जित नहीं होती वरन् विज्ञापन, पूँजी, तकनीक और बाजारवादी शक्तियाँ उसका पोषण करती हैं। परिवर्तन की तीव्रगति से गुजरते राष्ट्रों, समाजों और मनुष्यों के लिए आज के समय में 'दीर्घजीविता' एक अवमूल्य है आलस्य, अकर्मठता और सुस्ती का प्रतीक तथा 'क्षणजीवी' होना एक बड़ा मूल्य स्मार्ट, एलर्ट और डायनेमिक होनी की निशानी। शंभुनाथ जी की मान्यता के बिल्कुल उलट जहाँ वे क्षणजीवी होनी को एक आरोप की तरह मढ़ते है। इस अर्थ में समसामयिक व्यवसायिक पत्रकारिता समाज के साथ अपनी रफ्तार बनाए हुए है और खुद को बचाए हुए भी। आप देखें तो पाएँगें कि एक मिनट में पूरी दुनिया में लगभग एक अरब खबरें निकलती हैं। इस तीव्रता से हमारा मन थर्रा उठता है लेकिन इससे बच पाना मुश्किल है।

पहले विचार और सूचनाएँ अखबारों के माध्यम से विभिन्न अवरोधों अशिक्षा, आर्थिक

और भौगोलिक के चलते देरी से आम जनता तक पहुँचते थे। आज इन तीनों अवरोधों में कमी आयी है इसलिए अखबारों की पहुँच और प्रभाव में तेजी आयी है। अखबारों और पत्रकारिता के समक्ष नयी चुनौतियाँ भी पैदा हुई हैं जो प्रेमचन्द के समय न थी। उन्हें रेडियों, टेलीविजन, इंटरनेट से भी मुकाबला करना है। सूचनात्मक प्रसार में देरी समाचार पत्रों को बासी बना देती है। इसलिए उन्हें अपने वेब संस्करण निकालने पड़ रहे हैं। आज की पत्रकारिता के समक्ष सर्वथा नयी चुनौतियाँ है। तकनीकी विकास ने ही यह चुनौतियाँ उपस्थित की हैं तो तकनीक ही इनके निराकरण के लिए आगे आयी।

तुलसीदास को आज अपना मानसप्रवचन किसी घाट पर करने के बजाय टी. वी. चौनल पर करना पड़ता, अन्यथा उनकी लोकप्रियता संदिग्ध होती और वे एक गुमशुदा संत भर बनकर रह जाते। पुस्तकों और अखबारों को बहुमूल्य विचारों से लैस करके पुराने छापेखाने से निकालिए उन्हें कोई न पढ़ेगा। प्रेमचन्द के बाद कथ्य और प्रस्तुति के संतुलन ने पत्रकारिता को नया आयाम प्रदान किया है। इस संतुलन के अभाव में समकालीन पत्रकारिता का अस्तित्व संभव नहीं। अपनी मुद्रण प्रणाली, पृष्ठ सज्जा, संपादन और फोटो चयन के सहारे समाचार पत्रों ने पाठकों की रूचि को परिष्कृत और परिभाषित किया है। आप यह मानकर चलें कि पत्र पत्रिकाओं के लिए केवल अन्य संचार माध्यम रेडियो, टी.वी., इंटरनेट, एस.एम.एस. और फिल्में ही चुनौती बनकर खड़ी है बल्कि उसकी होड़ पिज्जा खाने, कोक पीने और समूचे पिकनिकी माहौल से है, जिसका अध्धयन एक स्वतंत्र और रोचक विषय है। इस समूचे परिप्रेक्ष्य में पत्रकारिता के अस्तित्व और उनके वर्तमान स्वरूप का मूल्यांकन करना चाहिए।

डॉ. रामविलास शर्मा 'सरस्वती' और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रशंसा इसलिए करते थे कि उन्होंने कलात्मक साहित्य का ही प्रोत्साहन नहीं किया अपितु 'ज्ञानकाण्ड' को भी समृद्ध किया। आज का ज्ञानकाण्ड बहुपरती, विविध, व्यापक और विस्फोटक है। इससे जुड़े रहने और समृद्ध करने की हमारी प्रविधि और तौर तरीके पुराने नहीं हो सकते। 1931 में जब 'हंस' का एक साल पूरा हुआ तो प्रेमचन्द ने लिखा हमें आर्थिक हानि भी हुई, राजनीतिक दण्ड भी भोगना पड़ा। पर हमने हिम्मत न हारी। हमने अपने सामने जो आदर्श रखा है, वह उत्साह बढ़ाते रहने के लिए काफी है। हम घाटे नफे के कायल नहीं है। घाटे नफे का विचार किए बिना आज भी पत्रकारिता की जा सकती है और हो भी रही है लेकिन इनकी संचारात्मक क्षमता, सामाजिक प्रभाव और पहुँच और जवाबदेह प्रशासन के निर्माण, परिवर्तन में इनकी भूमिका क्या और कैसी होगी इसे सहज ही जाना जा सकता है। प्रेमचंद के बाद पत्रकारिता की यात्रा, साहित्य से व्यवसायिक, विचार से सूचना, दीर्घजीवी से क्षणजीवी, अभाव से वैभव, उत्सर्ग से युक्ति, सुस्ती से त्वरित एवं व्यापक तथा मिशन से मीडिया की दिशा में सक्रिय रही है।

आज जब हर जेब में टेलिविजन घूम रहा है, हर व्यक्ति चंद सेकेंडों में दुनिया की सूचना ले दे रहा हैय तथ्यों को वेरिफाई कर रहा है तब मीडिया के सरोकार बहुत बदल भी जाते हैं। फिर

भी, बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ अपनी सीमित संसाधनों से समसामयिक विचारों के निरूपण में तत्पर हैं। वे राजनीतिक वितंडे से दूरभुखमरी, सामंती जीवनमूल्यों, बाढ़अकाल, शोषण और गरीबी के निराकरण के लिए संघर्षरत हैं। वे प्रेमचंद की विरासत को बचाए हुए हैं लेकिन उन्हें संचारात्मक क्षमता का विकास करना पड़ेगा। वे तकनीक का इस्तेमाल कर अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे, तभी वे सामाजिक हस्तेक्षप का स्वर प्रभावशाली ढंग से बुलंद कर सकेगी। अभी हाल ही में द वॉयर, नामक एक पोर्टल ने, जिसके पास बहुत ही सीमित संसाधन है ने एक बड़ा खुलासा किया जिसमें एक राजनीतिक दल के नेता-पुत्र पर भ्रष्टाचार का आरोप लगा। यह खबर पूरी तरह से मुख्यधारा के मीडिया से पूरी तरह गायब थी इसके बावजूद इसका व्यापक असर हुआ और पोर्टल अब मानहरण के वैधानिक केस का सामना कर रहा है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप, और भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज, अपनी गतिविधियों की जानकारी सबसे पहले ट्ववीट के जरिए ही देते हैं और इसके बहुत सकारात्मक परिणाम भी आए है। हाल ही में एक रूसी पर्यटक जिसका एटीएम कार्ड ब्लॉक हो गया था भारत के दक्षिणी प्रदेश तमिलनाडु में भीख माँगने को मजबूर हो गया था। सुषमा स्वाराज ने इसका संज्ञान लेते हुए उसे एक ट्वीट, के जरिए दिलासा दी और अपने अधिकारियों को उसकी मदद का निर्देश दिया। मीडिया का यह तकनीकी अवतार आज से पहले कभी संभव न था।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. पांडे, मृणालय (2017, सितम्बर 17) रुश्रनउसंश्रंलंदजप पर आनंदित, पुलकित, रोमांचित वैशाखनंदन। लिंक https://twitter-com/MrinalPande1/status/909275359903809536, 2. जेपी,राँबिनय भारत की समाचार पत्र क्रांति, नई दिल्ली भारतीय जनसंचार संस्थान, पृ. 2, 3. शंभुनाथय (1987, अप्रैल जून) आलोचना, पृ. 37, 4. नन्दा, वर्तिकाय (2010) टेलीविजन और क्राइम रिपोर्टिंगय नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 5. रंगभूमि (1923, उपन्यास) प्रेमचंद की इस कृति का नायक सूरदास गाँधी की दृढ़ता, सिद्धातपरता और जीवटता का परिचायक है। यह चरित्र अपने युग का प्रतिबिंबन करता है जिसकी झलक तत्कालीन पत्रकारिता में भी दिखाई देती है।, 6. शर्मा, रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युगय नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, पृ0 122, 7. हंस, (1930)। मुंशी प्रेमचंद द्वारा संपादित-प्रकाशित, 8. जागरण, मुंशी प्रेमचंद द्वारा संपादित, 9. माधुरी, मुंशी प्रेमचंद द्वारा संपादित, 10. राजेंद्र माथुर, नवभारत टाइम्स के पूर्व संपादक और मूल्यवादी पत्रकारिता के लिए प्रसिद्ध।, 11. प्रभाष जोशी, जनसत्ता के पूर्व संपादक। गाँधीवादी विकास दृष्टि के पत्रकार।, 12. प्रेमचंद, हंस (1930), 13. सिंह, रोहिणीय (2017, अक्टूबर 8). जेम Golden Touch of Jay Amit Shah- नई दिल्ली द वॉयर डॉट इन लिंक from https://thewire-in/185512/amit&shah&narendra&modi&jay&shah&bjp/, 14. ट्रंप, डोनल्डय वर्तमान अमेरिकी राष्ट्रपति। मुख्यधारा के मीडिया से अप्रसन्न ट्रंप ने सोशल मीडिया को अपने विचार अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनाया हुआ है। अनेक राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय निर्णयों की जानकारी वे बहुधा इसके जरिए ही देते हैं।, 15. स्वराज, सुषमाय भारत की विदेश मंत्री और सक्रिय ट्विटरति। विदेशों में बसे भारतीयों की सहयता के लिए ट्विटर के जरिए तत्पर। नागरिकों को सहयता देने के लिए भारतीय दूतावासों को सोशल मीडिया के द्वारा निर्देश देने के लिए प्रसिद्ध।, 16. स्वराज, सुषमाय (2017 अक्टूबर, 11), ' 'Evangelin & Your country Russia is our time tested friend My officials in Chennai will provide you all help-'' लिंक https://twitter-com/SushmaSwaraj/ status/917797519840600064

राम प्रकाश द्विवेदी, एसोसिएट प्रोफेसर, डॉ भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई-मेल :ram@globalculturz-org

आलोचना का निकष 'दस्तावेज' पत्रिका के संपादकीय

डॉ. चौनसिंह मीना

'दस्तावेज' पत्रिका के प्रवेशांक में ही विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की प्रभावी संपादकीय दृष्टि को देखा जा सकता है। रचना-आलोचना की आज की स्थिति पर उन्होंने लिखा है।

हिंदी में कुछ पत्रिकाएँ ऐसी हैं जिनका उल्लेख किए बिना पत्रकारिता की बात पूरी नहीं होती। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के संपादकत्व में गोरखपुर से निकलने वाली 'दस्तावेज' पत्रिका पत्रकारिता के नए मानदंड निर्धारित करती है। 1978 ई. में 'दस्तावेज' पत्रिका जिस उद्देश्य को लेकर शुरू की गई उसने लगभग सभी प्रकार से उसे पूरा किया। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। उन्हें अब तक 'अर्न्तराष्ट्रीय पुश्किन पुरस्कार', 'व्यास सम्मान', 'साहित्य भूषण सम्मान', 'हिंदी गौरव सम्मान', 'महापंडित सांकृत्यायन सम्मान', 'ख्याति सम्मान' आदि से नवाजा जा चुका है। उनके द्वारा लिखित संपादकीय बेहद प्रभावी रहे। 'दस्तावेज' पत्रिका को 'सरस्वती सम्मान' मिला। अभी हाल ही में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा कृत किताबघर प्रकाशन से प्रकाशित 'देशराग' पुस्तक में 'दस्तावेज' पत्रिका के विशिष्ट संपादकीय संकलित हैं। उत्कृष्टता, रचनात्मकता और विविधता की दृष्टि से संकलन का 'देशराग' नामकरण सार्थक है। पत्रकारिता में स्पष्टता और बेबाकी आवश्यक है और यही विशेषता विश्वनाथ तिवारी की पत्रकारिता को एक नया आयाम प्रदान करती है। यहाँ उनका पारदर्शी व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। इस संदर्भ में पुस्तक की भूमिका में उल्लेख मिलता है 'मैं किसी राजनीतिक दल से सम्बद्ध नहीं हूँ, अतः

मेरा आक्रोश या विरोध भाव सबके प्रति व्यक्त हुआ है। इसे सात्विक आक्रोश या एक नागरिक का कर्तव्य ही मानना चाहिए। एक लेखक इससे अधिक और कर भी क्या सकता है? मैं भारतीय गाँव का एक साधारण व्यक्ति हूँ और मैंने सामान्य जीवन को न केवल देखा है बल्कि उसी कीचड़ और अंधेरे में स्वयं साँस ले रहा हूँ। इसके लिए जिम्मेदार लोगों के प्रति मेरे मन में शिकायत स्वाभाविक है।'देशराग,भूमिका से, पृ. 5

'दस्तावेज' पत्रिका के प्रवेशांक में ही विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की प्रभावी संपादकीय दृष्टि को देखा जा सकता है। रचना-आलोचना की आज की स्थिति पर उन्होंने लिखा है 'संपादकों और आलोचकों की गुटबंदियों तथा लेखकों की अतिवादी रुझानों से बहुत अधिक हो चुका है रचना-आलोचना का।' रचनाकार हो या आलोचक एवं संपादक, चुनौतियाँ सभी के समक्ष रहीं। एक सशक्त आलोचना की पत्रिका निकालना कितना संघर्षपूर्ण कार्य है इसे 'एक साहित्यिक पत्रिका का संघर्ष' में बखूबी देखा जा सकता है। 'पत्रिका निकालना भी लेखन की तरह एक नरक से गुजरना है। इस सर्जनात्मक (और असर्जनात्मक) आयोजन में उस क्रूर संसार का अधिक गहरा साक्षात्कार होता है जिसके बीच एक लेखक जी रहा या धीरे-धीरे मर रहा होता है।' (देशराग, पृ. 9) 'दस्तावेज' पत्रिका के संपादकीय समाज और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मसलन साहित्य, साहित्यिक व्यक्तित्व, राजनीति, खेल, तकनीक, विज्ञान, धर्म, यात्रा इत्यादि से जुड़े मुद्दों, विमर्शों पर केंद्रित रहे। इन संपादकियों में देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण भी देखा जा सकता है। विविध क्षेत्रों की उपलब्धियों और सीमाओं पर तत्कालीन संदर्भ में विस्तृत चर्चा दस्तावेज के अंकों में है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया। समयानुसार इसके संदर्भ में पक्ष-विपक्ष में अनेक दलीलें दी गई। समय के साथ ही साहित्य की अवधारणा में भी विकृतियाँ समावेशित होती चली गई। साहित्य भी विसंगतियों का शिकार बनता चला गया। साहित्य के संदर्भ में यह एक जरूरी पक्ष है और संपादक ने इसकी बारीकी से पड़ताल की है। 'हमारे समय में साहित्य में भी राजनीति से कम पक्षपात, गुटबाजी और अव्यवस्था नहीं है। अनेक साहित्येतर कारणों से महिमामंडित हो चुके कुछ लेखकों ने साहित्य के साथ वैसा सलूक किया है जैसा राजनेताओं ने जनता के साथ।' (देशराग,भूमिका से, पृ. 5) महत्वपूर्ण रचनाकार और उनकी रचनाएँ जो समकालीन समय में विभिन्न कारणों से नोटिस नहीं की गई उनको भी विश्वनाथ तिवारी ने पत्रिका के अंकों में पर्याप्त सम्मान दिया। चर्चित-अचर्चित उनके लिए उतना महत्व का नहीं बल्कि जीवन और समाज के लिए कितना उपयगी है इस पर उनका ध्यान केंद्रित रहा। पुस्तक में पहला संपादकीय लेख 'भुट्टो को फांसी दिए जाने पर' शीर्षक से है। किस तरह सत्ता का लोभ किसी एक व्यक्ति को ही नहीं बल्कि पूरे राष्ट्र को खतरे में डाल देता है इसे अनेक उदाहरणों के साथ यहाँ देखा जा सकता है। विश्वनाथ तिवारी के अनुसार सत्ता और राजशक्ति जब एक व्यक्ति पर केंद्रित हो जाती है तो मूर्खतापूर्ण नतीजा निकलना कोई आश्चर्य की बात नहीं होती। भुट्टो के बहाने यहाँ

संपादक ने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव और सत्ता के चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। 'तानाशाही और लोकतंत्र' शीर्षक में जनवरी 2012 में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री के साहसी बयान का उल्लेख किया गया है 'देश को लोकतंत्र और तानाशाही के बीच किसी एक का चुनाव करना है। संसद चाहे तो वर्तमान सरकार का कार्यकाल घटाकर नया चुनाव करा दे पर सरकार के अपराधों का दंड लोकतन्त्र को नहीं दिया जाना चाहिए।' 'एक साहित्यिक पत्रिका का संघर्ष' में दस्तावेज पत्रिका और उसको लेकर आने वाली समस्याओं का चित्रण किया है। कुल 25 अंकों का लेखा-जोखा और पाठकीय प्रतिक्रिया इस संपादकीय में है। दस्तावेज के अंतर्गत भारतीय भाषाओं और साहित्य के साथ विदेशी साहित्य पर 25 अंकों में पर्याप्त सामग्री प्रकाशित की गई थी। इसके अंतर्गत 'समकालीन भारतीय लेखन' स्तंभ में विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों के योगदान का उल्लेख है। 'आलोचना के हाशिए पर' शीर्षक से चार संपादकीय हैं। पहले में स्पष्ट किया है कि भारतीय परिदृश्य में जिस तरह शिष्ट और लोक संस्कृति रही हैं वैसे ही वेद काल से लेकर आज तक भाषा की भी दो स्पष्ट धाराएँ मिलती हैं। इसी आलोक में विशेषांक के अंतर्गतव्यापक लोक को प्रभावित करने वाली भोजपुरी भाषा का उल्लेख किया है। भोजपुरी अभी सरकारी मान्यता प्राप्त भाषा नहीं है बाबजूद इसके वह जनाधार के बलबूते विस्तृत हो रही है। यही उसकी ताकत है। दूसरे संपादकीय में गीत और गजल विधा को लेकर उल्लेख किया गया है। कविता से लेकर गजल तक का तुलनात्मक अध्ययन बेहद प्रभावी है। समय के अनुसार विधा, रूप आदि में परिवर्तन आवश्यक है अतः गीत और गजल विधा की संरचना में भी परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया है। तीसरे संपादकीय में औधोगिक, तकनीकी एवं सूचना क्रांति के आलोक में आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण आदि के प्रभावों का उल्लेख है। यहाँ मानवीय समाज के पुराने मूल्यों? (प्रेम, करुणा, उत्सर्ग, विश्वास) और नए मूल्यों (स्वतन्त्रता, समता, बंधुत्व) के द्वंद को बारीकी से रेखांकित किया गया है। बीसवीं सदी के अंत में दुनिया तकनीकी रूप से भले ही तुरंता हो चुकी थी लेकिन हत्या, बलात्कार, हिंसा, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जातिवाद, पूंजीवाद, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा जैसी समस्याओं में दिनोंदिन वृद्धि हुई। अतः आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, तकनीक, विज्ञान, प्रगति और विकास के बीच आने वाले मनुष्य और समाज की दशा और दिशा तय करना अब और अधिक कठिन हो गया। संपादक की चिंता आधुनिक यंत्रीकरण के प्रभाव से क्षीण होती उन परम्पराओं के प्रति भी है जो दीर्घ समय में निर्मित हुई तथा मानव के अनुकूल हैं। चौथे संपादकीय में तकनीकी विकास के चलते पत्र लेखन की परंपरा के हास की चर्चा है। पत्र लेखन से अनेक साहित्यकारों के निजी जीवन के संबद्ध में अनेक नई बातें पाठकों तक पहुँचती हैं। पत्र लेखन की महत्ता को समझते हुए इस विधा को जीवित रखने के उद्देश्य से दिवंगत साहित्यकारों के पत्रों पर 'दस्तावेज' पत्रिका का विशेषांक निकाला गया। 'विद्यानिवास मिश्र को अंतिम प्रणाम' और 'विष्णुकांत शास्त्री को श्रद्धांजलि' शीर्षक में दोनों साहित्यकारों से जुड़े संस्मरणों का उल्लेख किया है। कर्मठ व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ-साथ दोनों लेखकों की सरलता, सहृदयता, आत्मीयता और जिजीविषा पर प्रकाश डाला गया है। 'राजनीति और साहित्य के सरोकार' शीर्षक से जो संपादकीय

है वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विश्वनाथ तिवारी के अनुसार राजनीति का लक्ष्य सत्ता है जबकि साहित्य का जनता। इसीलिए वे राजनीति के पक्ष को लेखक का पक्ष नहीं मानते। उन्होंने उल्लेख किया है कि 'मैं शुरू से ही इस विचार का रहा हूँ कि लेखक या बुद्धिजीवी को किसी ऐसे व्यक्ति या पार्टी के साथ इतना नहीं जुड़ना चाहिए कि वह जरूरत पड़ने पर उसका विरोध न कर सके।' यह अतिशयता लेखक और साहित्य दोनों के लिए आत्मघाती है। भारत कृषिप्रधान देश है। कृषि और किसान के विरुद्ध कोई भी कृत्य इस देश की संस्कृति और अस्मिता को खतरा उत्पन्न करने जैसा है। विसंगति से युक्त औधोगिकीकरण, अनियंत्रित यंत्र और तकनीक, पूँजीवाद आदि किसान विरोधी हैं। बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रीय कंपनियाँ सरकार के साथ मिलकर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए किसान विरोधी योजनाओं को अंजाम दे रही हैं। आज खाद, बीज एवं कृषि उपकरण किसान की पहुँच से दूर हैं। राजधानी के आस-पास की भूमि अधिग्रहित हो चुकी है, बंजर हो चुकी है या प्रॉपर्टी में बदल चुकी है। कृषि भूमि के अधिग्रहण को विश्वनाथ जी ने भारतीय सभ्यता पर आक्रमण की संज्ञा दी है। यह स्थिति पूरे देश में देखी जा सकती है, कारण है अंधाधुंध शहरीकरण। 'सेज' के नाम पर भूमि अधिग्रहण को देखा जा सकता है। भूमि अधिग्रहण के विरोध में सिंगूर, नंदीग्राम, हरिपुर, बारासात, राजारहाट, सुंदरगढ़ की घटनाओं को देखा जा सकता है। कृषि प्रधान देश में किसानों की हत्या और आत्महत्या असहनीय है। इसके विरोध में उठी आवाज को दबाया जा रहा है परिणामतः आज करोड़ों लोगों की आजीविका का संकट खड़ा हो गया है। किसान जीवन से जुड़े मुद्दों पर पर कई शीर्षकों से बहुत कुछ 'देशराग' पुस्तक में है। 'लोकतन्त्र में कार्यपालिका' में स्पष्ट किया गया है कि आज विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों में भीषण अंतर्विरोध व्याप्त हैं जबकि तीनों पर मिलकर लोकतंत्र और संविधान की रक्षा का जिम्मा है। निर्भीकता 'दस्तावेज' के संपादकियों में है। संसद भवन के गुनहगारों को सजा में बिलंब होने पर वीरता पदक लौटा दिए गए थे। फैसले में बिलंब पर विश्वनाथ तिवारी ने 'दस्तावेज' के जनवरी-मार्च, 2007 के अंक में टिप्पणी की थी कि 'सरकार को संसद भवन के सामने वाले फौवारे के पानी में या इंडिया गेट स्थित नौका विहार वाली नहर में डूब मारना चाहिए।'

विश्व हिंदी सम्मेलन का विरोध कोई नई बात नहीं लेकिन विश्वनाथ तिवारी के अनुसार इससे हिंदी के पक्ष में एक माहौल बनता है। देश-विदेश में हिंदी प्रेमियों का बड़ी संख्या में इकठ्ठा होना महत्वपूर्ण है। भाषा को भ्रष्ट करने वाले तथाकथित प्रगतिशीलों को विश्वनाथ तिवारी ने आड़े हाथों लिया है 'सुपरहिट', 'रीडिंग्स', 'कैनन', 'इम्यून', 'ग्लोबल', 'एकेडमिक्स', 'पॉपुलर', 'थियरीज', 'हाइपररीयल', 'टेलैंट हंट' आदि ऐसे ही शब्द हैं जो हिंदी प्रेमियों पर थोपे जा रहे हैं। हिंदी की शब्दावली को भी विकृत किया जा रहा है मसलम 'बुद्ध' को 'बुद्धा', 'राम' को 'रामा', 'कृष्ण' को 'कृष्णा', 'दशरथ' को 'दशरथा'। ऐसे प्रयोगों को हिंदी के विरुद्ध षड्यंत्र बताया गया है। तिब्बत की स्वतन्त्रता के संदर्भ में भी विश्वनाथ तिवारी ने सरकारी रवैये की आलोचना की है। इस संदर्भ में इच्छा होने के बाबजूद भारत तिब्बत को सहयोग देने में चीन से भय खाता था। तुलसी, अज्ञेय के विरोधी मतों का खंडन इस पुस्तक में तिवारी जी ने बड़े मनोयोग से किया है। विराट

समन्वय के कवि तुलसी का विरोध केवल विरोध के लिए है जबकि दुनिया का शायद ही कोई कवि अपने समय से इतनी गहराई में आतंकित हुआ हो। इसी तरह अज्ञेय का विरोध किया गया। उन्हें अंग्रेजों का जासूस तक कहा गया। जबकि वे एक स्वाधीन चिंतक, मूल्यवादी, प्रखर बुद्दिवादी, प्रयोगधर्मी, आधुनिकता के अग्रदूत रहे। रचनाकारों के इस तरह के विरोध को तिवारी जी ने 'गीध दृष्टि' की संज्ञा दी है। इस संदर्भ में उन्होंने परमहंस रामकृष्ण देव को उद्धृत किया है 'गीध को प्रकृति ने सबसे तेज दृष्टि दी है। वह कई योजन दूर से चीजों को देख सकता है। मगर ऐसी शस्य श्यामला और सुफला पृथ्वी पर वह देखता है सिर्फ सड़ा हुआ मांस।'

'बच्चे और हम' में बाल मनोविज्ञान और समस्याओं को रेखांकित किया है। यहाँ आधुनिक शिक्षा की विसंगतियों पर तंज कसा गया है। यह शिक्षा नहीं बल्कि केवल सूचना प्रदान करना है। यही आधुनिक शिक्षा प्रबुद्ध भारतीय मानस के विदेशों में पलायन का बड़ा कारण है। यह शिक्षा व्यवस्था सामाजिक भेद का निमित्त बन चुकी है। जनसंख्या वृद्धि संपूर्ण विश्व की मुख्य समस्या है। आज लगभग एक दशक में ही एक अरब जनसंख्या बढ़ रही है। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं। विश्वनाथ तिवारी इस समस्या की तह में जाकर स्पष्ट करते हैं कि 'भारत में जनसंख्या वृद्धि न तो उच्च वर्ग में हो रही है, न मध्य वर्ग में और न ही शिक्षित वर्ग में। यह सिर्फ निम्न वर्ग, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग, अशिक्षित वर्ग और आर्थिक एवं शिक्षा में पिछड़े मुस्लिम समुदाय में हो रही है। इससे जाति एवं संप्रदाय के आधार पर राजनीति करने वाले नेताओं को लाभ हो रहा है क्योंकि उनका वोट बैंक बढ़ रहा है।' (देशराग, पृ. 108) 'राष्ट्रकवि और राष्ट्रीयता' में विश्वनाथ तिवारी ने स्पष्ट किया है कि 'रचनाकार किसी एक देश और राष्ट्र का नहीं बल्कि मानव मात्र की वेदना का गायक होता है। उसका देश मूल्यों का देश है।' 'यदि अब भी न चेते तो' शीर्षक में आतंकवाद और उससे जुड़ी समस्याओं का चित्रण है। इस समस्या के केंद्र में किसी एक धर्म से जुड़े लोगों को निशाने पर लिया जाता है- 'आज दुनिया भर में मुसलमानों को शक की निगाह से देखा जा रहा है जिसके चलते यह कौम एक विचित्र संकट में है। किसी व्यक्ति या जाति के लिए इससे बड़ी त्रसद स्थिति नहीं हो सकती कि उसे संदेह की निगाह से देखा जाए। इसके मुकाबले के लिए मुस्लिम बुद्धिजीवियों और विचारकों को सड़कों पर उतरकर आतंकवादियों के विरुद्ध अपनी कारगर आवाज बुलंद करनी चाहिए तथा गांधी की तरह अहिंसात्मक सत्याग्रह, अनशन, आमरण अनशन आदि तक करना चाहिए।' 'वैश्विक आतंकवाद और मीडिया' शीर्षक में आतंकवाद के मूल में चार कारण बताए गए हैं- गरीबी और असमानता, राजसत्ताओं की विस्तारवादी नीति, धर्मों की कटरता तथा सिद्धांतों में हिंसा की स्वीकृति। 'तालिबान में औरत' में स्त्री पर थोपी गई पाबंदियों का उल्लेख है। वाकई यह एक बड़ा संकट है कि इन तमाम पाबंदियों के बीच एक स्त्री क्या करे तथा क्यों और किस उद्देश्य को लेकर जिए? 'अयोध्या फैसला आस्था, इतिहास और कानून' में राम मंदिर-बाबरी मस्जिद विवाद के इतिहास और भारतीय राजनीति एवं जनजीवन पर हुए प्रभाव को रेखांकित किया गया है। इसमें नेताओं से इतर आम जन जीवन से राय ली गई तो जबाव आता है

कि 'एक बार फिर सांप्रदायिक सद्भाव बिगाड़ने का माहौल तैयार कर रहे हैं। ऐसे विवाद को लंबा खींचना समझदारी नहीं है।'निसंदेह केवल कुछ स्वार्थी लोगों के चलते पूरे भारतीय जनमानस को कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

'दस्तावेज' पत्रिका के संपादकीय विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के गहन अध्ययन और चिंतन-मनन का परिणाम है। उन्हीं संपादकियों का संकलन 'देशराग' पुस्तक में है। आलोचना के उत्कृष्ठ आयाम यहाँ हैं। उनकी आलोचना पाठक को सचेत करती है। सामाजिकता और मानावता की रक्षा के संदर्भ में संपादक का कठोर हृदय से युक्त हो जाना अनुचित नहीं है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा भी है 'इन टिप्पणियों में साहित्य, संस्कृति, भाषा और व्यक्तियों के प्रति जो कुछ भी व्यक्त हुआ है, वह गहरे देशराग के कारण ही। भारत का साधारण आदमी और उच्चतर मूल्य ही इन टिप्पणियों का पक्ष रहा है और उसे संकट में डालने वाला सब कुछ विपक्ष। भाव का जो अंश रचना में ढलने से रह गया, वही इस सीधे कथन के रूप में व्यक्त हुआ।' (देशराग, भूमिका से, पृ. 6) समस्या प्रत्येक युग और समाज में उपस्थित रहती है लेकिन उसे विशिष्ट नजरिए से देखने की कला कर्मठ व्यक्तित्व का निर्माण करती है। स्पष्टत: आपातकाल के बाद लगभग 35-40 वर्ष की जो समयावधि है जिसमें भारत और वैश्विक परिदृश्य में इतना कुछ घटा उसी का चित्रण 'देशराग' में देखने को मिलता है। लोकतंत्र, संसद, न्यायपालिका, कार्यपालिका, कानून, समाज, राजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था के करोड़ों भारतीयों पर पड़े प्रभाव का आख्यान 'देशराग' में है। किसान, मजदूर, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक इत्यादि का जीवन और उनका संघर्ष यहाँ है। विभिन्न आंदोलनों और सांप्रदायिकता का दुष्परिणाम यहाँ चित्रित है। भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, फिल्म, मनोरंजन, खेल, मीडिया, वैश्वीकरण, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बाजारीकरण, पर्यावरण, परिवेश, स्वास्थ्य, शिक्षा सभी के संदर्भ में विचार 'देशराग' पुस्तक में मिलते हैं एकदम नए दृष्टिकोण के साथ। समकालीन भारतीय लेखन और समकालीन विदेशी लेखन तथा उसका प्रभाव यहाँ पूरी आभा के साथ चित्रित है। लेखक और पाठक के बीच सार्थक बहस को 'देशराग' पुस्तक एक नया आयाम प्रदान करती है। एक संतुलित और समन्वित दृष्टि पूरी पुस्तक में आद्यंत है। अंतत: कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय और समाज को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि से 'देशराग' निसंदेह एक पठनीय पुस्तक है। (समीक्ष्य पुस्तक- देशराग, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2017)

डॉ. चौनसिंह मीना, हिंदी विभाग पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, नेहरू नगर, दिल्ली – 110065 मो.– 08010081419, ई–मेल– csmeena-foa@gmail-com

✧ ✧ ✧

सॉनेट और त्रिलोचन

डॉ. विद्या सागर सिंह

हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन को सॉनेट रचना की प्रेरणा कहाँ से मिली यह एक रहस्य है। लेकिन ध्रुव शुक्ल ने गिनकर बताया है कि त्रिलोचन के सॉनेटों की कुल संख्या पाँच सौ अड़तीस है। उन्होंने सॉनेट के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्रिक ध्वनियों की व्यवस्था की है। ग्यारह और तेरह के विश्राम से यह हिंदी का जातीय छंद रोला है।

हिन्दी साहित्य और काव्यांदोलन के परिप्रेक्ष्य में प्रगतिवादी कविता जीवन की सम्पूर्णता एवं जीवन से लगाव की कविता है। सामाजिक यथार्थ बोध एवं जीवन जगत से जूझते हुए कवि के लिए हाथी से लेकर चींटी पर्यन्त जीव तक कविता का विषय हो सकता था। प्रगतिवादी आंदोलन के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में त्रिलोचन उर्फ वासुदेव सिंह का नाम स्तंभत्रयी में शामिल है। हिंदी के प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन सबसे अधिक आत्मसजग कहे जा सकते हैं। उनकी कवि प्रकृति शास्त्र और लोक के सामंजस्य से सृजित है। घुमक्कड़ी वृत्ति का भी उनकी कविता पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। कवि त्रिलोचन की आत्मसजगता आँखिन देखी' यथार्थ की अंतिम परिणति है। इसलिए उन्हें 'धरती का कवि' कहा गया है। उन्होंने गीत, गजल, रूबाइयों के अतिरिक्त सॉनेट खूब लिखे। सॉनेट रचना में त्रिलोचन का मन रमता था, इतना कि बकौल नामवर सिंह, केवल एक रात में ही इकतीस सॉनेट लिख डाले। केदारनाथ सिंह ने लिखा है, 'सॉनेट और त्रिलोचन हिंदी में पर्याय बन गए हैं।

सॉनेट को हिंदी में 'चतुर्दषपदी' कहा जाता है। त्रिलोचन को सॉनेट का आरंभकर्ता माना जाता है। जबकि कवि त्रिलोचन स्वयं इसे 'किराए की चीज' मानते है। पाश्चात्य साहित्य में सॉनेट का इतिहास काफी पुराना है। तेरहवीं सदी में टसकेन कवि ग्येतोन द' रेस्तों और

ग्वेदों ग्वी नित्सेली के अतिरिक्त दाँते, कवलकांति और पिस्तोवा आदि सॉनेट का शिल्प-प्रयोग कर रहे थे। लेकिन सॉनेट को कलात्मक उत्कर्ष देने का श्रेय प्राप्त करने वाले पहले कवि इटली के पेट्रार्क (1304-1374) माने जाते है। पेट्रार्क के रचना-समय से लेकर 18वीं सदी तक सॉनेट यूरोपीय देशों में लोकप्रिय हो चला था। सिडनी और शेक्सपियर ने सॉनेट को शिल्प का शिखर प्रदान किया।

एक मत यह भी है कि सॉनेट का जन्म पहले सिसली में हुआ। वहाँ वह एक तरह का श्रमगान था। जैतून के वृक्षों की प्रूनिंग करते समय सॉनेट गाए जाते थे। वैसे, सॉनेट अपने वास्तविक रूप में 13 वीं सदी में प्रकट हुआ। फा गुइतोन पेट्रार्क और दाँतें से पहले से सॉनेट लिख रहे थे और वे 'गुइतोनियन सॉनेट' के रूप में लोकप्रिय थे। भारत में ध्रुव शुक्ल ने सॉनेट के इतिहास पर गम्भीरता से प्रकाश डाला है। उनके मत में ''पेट्रार्क के सॉनेट उस हवा की तरह है जो उठकर धीरे-धीरे शांत होती है। जैसे कोई धुन धीरे-धीरे तिरोहित होती है। पेट्रार्क की समझ थी कि ''सानेट का अंत उसके प्रारंभ से अधिक लयात्मक होना चाहिए। सॉनेट की रचना-परंपरा को लेकर व्यापक विमर्श हुए हैं। एक मत यह भी है कि पेट्रार्क जैसी लोकप्रियता शेक्सपियर के सॉनेटों की नहीं है। इसलिए कि इतावली भाषा अंग्रेजी की तुलना में अधिक सांगीतिक है। भाव-विचार की स्वच्छंदता के बावजूद संगठन में अनुशासन शेक्सपियर के सॉनेटों की बड़ी विशेषता है। शेक्सपियर के बाद पेट्रार्क सॉनेट की परंपरा क्षीण हो चली।

हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन को सॉनेट रचना की प्रेरणा कहाँ से मिली यह एक रहस्य है। लेकिन ध्रुव शुक्ल ने गिनकर बताया है कि त्रिलोचन के सॉनेटों की कुल संख्या पाँच सौ अड़तीस है। उन्होंने सॉनेट के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्रिक ध्वनियों की व्यवस्था की है। ग्यारह और तेरह के विश्राम से यह हिंदी का जातीय छंद रोला है।

रोला एक मात्रिक समछंद है। इसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं। चार चरणों में मात्र क्रम समान होती है। ''त्रिलोचन सॉनेट रचना में पूरा वाक्य लिखते है। उनके वाक्य एक चरण से दूसरे चरण में फिसलते हुए चलते हैं। जैसे एक दूसरे का हाथ पकड़कर चल रहे हों।'' (त्रिलोचन संचयिता, पृ0 26)।

त्रिलोचन ने सर्वाधिक संख्या में सॉनेट लिखे है। रोला का अनुशासन मान लेने पर भी कई बार उन्होंने ग्यारह-तेरह पर विश्राम की व्यवस्था भंग की है। उन्होंने सॉनेट के अभिजात्य को छोड़ा है। उसके नागर-शिल्प को जनवादी संरचना में ढाला है। उन्होंने पेट्रार्क और शेक्सपियर दोनों को आत्मसात किया है और कहा जाए कि बावजूद इसके सॉनेट रचना का उनका अपना पथ बना है। 'पथ का यह रज कण हूँ जिस पर छाप युगों की' इस स्वीकृति के बावजूद उनका स्वर नैसर्गिक है और उसमें गूढ अगमता स्वयं बोलती है। उन्हें समझने के लिए उनसे संबद्ध शमशेर का एक सॉनेट द्रष्टव्य है।

सॉनेट और त्रिलोचन : काठी दोनों की है

एक कठिन प्रकार से बँधी सत्य सरलता.....
साधो गहरी साँस सहज ही..... ऐसा लगता
जैसे पर्वत तोड़ रहा हो कोई निर्भय
सागर तल में खड़ा अकेला : वज्र हृदयमय
नैसर्गिक स्वर में जब ऐसी गूढ अगमता
स्वयं बोलती हो जो युग की अवास्तविकता
को मानों ललकार रही हो, तब नि:संशय
अंतस्तल सिल-सिल जाता: चट्टाने भीतर
दु:खती-सी कसमस जीवन की..... बढ़कर उनपर
सीधी चोट लगाऊँ उनको ढोऊँ बरबस
डूबी हुई खान की निधियाँ सरबस
लाऊँ ऊपर! अपने अंदर ऐसा ही प्रण
लिए हुए हैं शायद सॉनेट और त्रिलोचन (1957)
('ऐसा ही प्रण' शीर्षक सॉनेट पृ011),

सॉनेट रचना के पीछे त्रिलोचन का एक संकल्प है। वे भी स्वीकार करते हैं कि सॉनेट का मार्ग सरल नहीं है। इसकी चौदह पंक्तियों में ही सबकुछ कहना है। त्रिलोचन ने एक सॉनेट में अपने पिता को बड़े सम्मान से याद किया है :-

हृष्ट-पुष्ट अन्तत शरीर वह, पित: तुम्हारा
एक चुनौती था मनुष्य की ऊँचाई के लिए
जिन्हें आवश्यकता थी उन्हें सहारा देते
तुमको देखा..... (उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 15)

तत्कालीन परिवेश में ग्रामीण समाज के लिए रामचरित मानस का सस्वर पाठ किसी मोक्षदायिनी गंगा से कम नहीं था। 'तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी/मेरी सजग चेतना में तुम बसे हुए हो' त्रिलोचन ने यह अकारण नहीं लिखा। त्रिलोचन का साहित्य जनता का साहित्य है। त्रिलोचन को 'धरती का कवि' कहने के पीछे उनकी कविता की जनपद का विस्तारण ही है जो उन्हें बाबा नागार्जुन के जन से और आचार्य हजारी प्र0 द्विवेदी के लोक से संबद्ध करता है और यह आचार्य शुक्ल के लोक मंगल की अवधारणा से जुड़ जाता है।

प्रगतिशील कवि त्रिलोचन की सामाजिकता पर किसी ने संदेह नहीं किया, इसके बावजूद उनकी अभिव्यक्ति का एक अंश आत्मपरक है। उनकी आत्मपरक कविताएँ उस व्यक्ति का इतिहास है जो कवि के रूप में निर्माण की प्रक्रिया में एक सामाजिक की तरह उभर रहा है। त्रिलोचन को कविता का पता दिया है उनके निजी दु:ख ने। वह कवि ही हो सकते थे। सॉनेट कवि

त्रिलोचन की अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख माध्यम बना तो इसकी वजह है इसका बदलता स्वरूप। इसमें उन्हें मन का सब कुछ कह डालने की सुविधा रही। शमशेर जिसे 'वज्र हृदयमय' कहते हैं, उसने वस्तुत प्रगतिशील कवियो में सबसे नरम कलेजा पाया है। वह किसी का दु:ख नहीं देख पाता, आँखे भर-भर आती है, मन थक जाता है। वह नि:स्व होकर पर दु:खकातर है। त्रिलोचन विचार मग्न हैं :-

सचमुच सचमुच, मेरे पास नहीं है पैसा
वह पैसा जिससे दुनिया धंधा होता है
तो क्या, दिल तो है ऐसा दिल जिसमें दिल का
ठीक-ठीक प्रतिबिंब उतर आता है। जैसा
दर्पण में जब-तब होता है.....
(दिगंत, पृ0 35)

कवि देख रहा है, इस वर्ग विभाजित समाज में अच्छाई बुराई के घर पानी भरती है। इसमें बड़ें-बड़े अडियल भी हार गए। अच्छाई के बिगड़ें दिन है और बुराई राजपाट करती है। यहाँ रानी चेरी है और चेरी रानी है। सच के आसन पर झूठ पुजाता है।

त्रिलोचन रूकते नहीं। उनके तन की तुलना में मन अधिक गतिशील है। विचार अग्रसर होते है। परिस्थितियाँ जटिल है, बाधाएँ बड़ी। लेकिन जूझने का मनोबल और भी मजबूत। वह युक्तियों का सहारा लेते हैं। कहते हैं- 'दु:ख घना हो तो अट्टहास कर।' अट्टहास में मन को गड़ने वाले दर्द डूब जाते है। आँसुओं की शक्ति का उन्हें सटीक संज्ञान है। 'मुए खाल की साँस से लौह भसम हो जाय'- कबीर की अनुभूति है। दु:खजन्य अश्रु में सारी दुनिया डूब जा सकती है। दु:ख का दुरतिक्रम घेरा केवल अट्टहास ही तोड़ सकता है।

त्रिलोचन का एक सॉनेट 'रात में'-
ढली रात, सुनसान गली है और अकेला
मैं चलता हूँ, नींद भरा स्वर, पहरेवाला
कहता है, जागते रहो
तम से है ऊँचे-ऊँचे भवनों का घेरा.....
मन को मोड़ा, देखा सिर पर सभ जुड़ी है
तारों की, सन्नाटा है..... (दिगंत, पृ0 42)

त्रिलोचन एक जगह खुद को 'जीवन का चित्रकार' कहते है। सॉनेट नहीं लिख रहे, मानो चित्र बनाते घूम रहे हैं, 'मन ही मन' कल्याण मनाता।' (दिगंत, पृ0 22)

उनका हृदय उस शतदल के समान है जो जीवन की लहरों का स्पर्श पाकर कविता में खिला है। उसने शुरू से ही रवि से अपनी ममता जोड़ रखी है। सॉनेट के 'वर्ण-वर्ण जिसकी किरणों के चारू चरण है''।

त्रिलोचन की रचना यात्रा आजीविका-संघर्ष से आहत-उद्धिन हुई तो समृद्ध भी कम नहीं हुई। साधनहीनता ने अनावश्यक अहं से मुक्त रखा। त्रिलोचन जिस जीवन के चित्रकार है वह जीवन एक समुद्र है। उसमें अवगाहन करना उनकी कवि-प्रकृति है। वह भीड़ से बचते नहीं, पर उनका मन अकसर अकेला पड़ जाता है-

''आज मैं अकेला हूँ
अकेला रहा नहीं जाता
जीवन मिला है
यह रतन मिला है।''

त्रिलोचन के लिए सॉनेट सर्वश्रेष्ठ आत्माभिव्यक्ति का भी माध्यम है। उन्हें कतिपय मूलभूत जीवन के प्रश्नों से जूझते देखना उनके सॉनटों में खासतौर से हुआ है। वे मूलभूत प्रश्न दार्शनिक लग सकते हैं। अहम इदम, तत कहने को अलग-अलग है। लेकिन तत्वत: नहीं। व्यष्टि और समष्टि के मिलन से जो रस तैयार हुआ है त्रिलोचन के यहाँ ज्यादातर वह सॉनेट है। त्रिलोचन की मानें तो :-

कवि मानव आत्मा का शिल्पी होता है।
मानव आत्मा विपुल बंधनों में जो जकड़ी
रहती है जिस तरह से बुढापे की लड़की
के बल पर कोई बूढ़ा तन को ढोता है।
उसी तरह से होता है। साहित्य सहारा
सबके मन का।
(अनकहनी भी कुछ कहनी हो)

कवि और कविता के बारे में त्रिलोचन ऊँचे विचार रखते हैं। उनकी कवि दृष्टि 'जग का बाना' देखती है। उनके देखने का सार मन का सत्य हुआ, श्वासों ने बस उसी के गान गाए। त्रिलोचन सूर्य का उदाहरण देते हैं :- ''सूरज एकाकी है लेकिन जब आता है

पृथ्वी का कण-कण तब नया गान गाता है। (दिगंत, पृ0 59)

जीवन समुद्र है तो जीवन की रचना की भाषा भी समुद्र है। भाषा की अंगुलि से मनुष्य के हृदय को टटोलने का काम केवल कवि ही कर सकता है। असंख्य जन के मन में नई आशा-अभिलाषा जगाने में जो सफलता एक कवि को मिलती है, वह अभिनंदन के योग्य है। त्रिलोचन की कविता परम अनिवार आत्मसंभवा अभिव्यक्ति भले न हो, किन्तु वह भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है। ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है। (दिगंत, पृ0 63)

हिन्दी जाति के संवेदना और संस्कारों को त्रिलोचन बखूबी समझते हैं। इसलिए अपनी

विवशता पर खेद प्रकट करते है। कवि निराला की तरह त्रिलोचन भी जीवन युद्ध में लड़ते हुए बार-बार हताश मानसिकता के शिकार होते है। जीवन के दबाव को त्रिलोचन महसूस करते थे। 'कभी-कभी सोचा करता हूँ शीर्षक धरती की एक कविता की पंक्तियाँ है-

कोई काम नहीं कर पाया
कभी किसी के काम न आया
जगती से अन्न-जल-पवन लेता रहता हूँ
क्या मेरा जीवन जीवन है।
पथ पर धूल उड़ा करती है
वह भी आखिर कुछ करती है।
पर मैं-मेरे मन, तुम बोलों-क्या करता हूँ।
क्या मेरा जीवन जीवन है। (धरती, पृ0 54)

कितनी गहरी वेदना छिपी है- इस पंक्ति में 'क्या मेरा जीवन जीवन है। आजीविका की तलाश में त्रिलोचन जगह-जगह भटकते रहे। उनके लिए दस-बीस की संख्या में एक साथ सॉनेट आदि लिख लेना सहज था। लेकिन सॉनेट लिखकर घर चलाना कठिन था। त्रिलोचन बार-बार इस दबाव को महसूस करते थे। फिर भी कविकर्म से विरत् नहीं हुए। कहना न होगा कि त्रिलोचन अपनी अंतिम सांस तक कवि-लेखक बने रहे। 2002 में उनका एक संग्रह 'मेरा घर' प्रकाशित हुआ। उसमें एक कविता है :-

'शब्दों से मेरा संबंध छूट जाएगा।' उसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं :-

मुझे अपने मरने का
थोड़ा भी दुख नहीं
मेरे मर जाने पर
शब्दों से
मेरा संबंध
छूट जाएगा। (मेरा घर, पृ0 29)

डॉ. विद्या सागर सिंह, हिन्दी विभाग, चौधरी चरण सिंह, वि0वि0 मेरठ, यू0पी0-25400041
मो0 : 8171803589, 9968382427, Email add. Vidyasagarsingh3@gmail.com

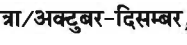

मृगतृष्णा

डॉ. रीतामणि वैश्य

'एक अच्छी खबर है। हमारे यहाँ के मिनिस्टर के वहाँ इसे काम मिला है। महीने में दो सौ देंगे।'

'तुमलोग दूसरों का ही बोझ ढोते रहोगे क्या ? अपने बारे में कब सोचोगे ? अभी इनके पढ़ने का समय है।' 'ये सब बातें हमारे लिए नहीं हैं। महीना खत्म होते न होते पैसा तुम्हारे घर आ जाता है। हमारे बच्चे काम नहीं करेंगे तो हम खाएँगे क्या?'

पिछले कुछ दिनों से दसवीं के रिजल्ट को लेकर पूरे अंचल में सनसनी फैली हुई है। सनसनी आज उत्तेजना में बदल गई है। मदरसा का रिजल्ट भी एक साथ घोषित होगा। दिन के ग्यारह बजे रिजल्ट निकल रहा है। पर शहर से रिजल्ट गाँव पहुँचने में दोपहर के दो तो बज ही जाएंगे। गाँव के लोगों के लिए आज का एक पल एक युग-सा लग रहा है। सबकी नजरें अफरीदा पर टिकी हुई हैं। चर अंचल के मुसलमान संप्रदाय के इस गाँव के लोग पहली बार परीक्षा के परिणाम को लेकर उद्ग्रीव हुए हैं। यह शिक्षा को लेकर उनकी सजगता के कारण नहीं है, बल्कि कारण कुछ और है। दूसरे चर अंचलों की सभी विशेषताएँ गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि इस गाँव में भी मिलती हैं। नया है तो सिर्फ आसिफ मास्टर का अद्भुत विचार। पिछले कुछ वर्षों तक इस गाँव के लोग बच्चों को स्कूल भेजने की जरूरत महसूस ही नहीं करते थे। लड़कियों का तो सवाल ही नहीं उठता। पर अब युग बदल चुका है। मिनिस्टर ने चौक में एक मदरसा बैठाया है। दो-चार परिवार बच्चों को स्कूल भेजने लगे हैं। वैसे इन बच्चों के नाम तो दूर-दूर के कई स्कूलों में भी भर्ती हैं। सरकार ने मास्टरों की नौकरी पक्की करने के लिए स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों की लिस्ट मांगी थी। तब स्कूल के शिक्षकों ने घर-घर घूमकर बच्चों के नाम इकट्ठा किए थे। कुछ स्कूल तो रातों रात खुले गए थे, रातों रात शिक्षकों की नियुक्ति हुई थी

और रातों रात नौकरी पक्की करने की मांग भी सरकार से की गई थी। इस पूरी प्रक्रिया में गाँव के पंचायत से लेकर अफसर,मंत्री सबका का सहयोग था और सबने अच्छा लाभ उठाया । तभी वहाँ के बच्चों के नाम उस क्षेत्र के सभी स्कूलों में दाखिला कर दिये गए थे। इन्हीं बच्चों के उपयोग से स्कूल सरकारी हुए थे और शिक्षकों को तंख्वाह मिली थी। दोपहर के सरकारी भोजन का मासिक हिस्सा इन बच्चों के घरवालों को स्कूलों की तरफ से भेज दिया जाता है। आसिफ मास्टर गाँव का पुराने मास्टर हैं, उनका नाम है यहाँ । वे जब जहाँ मौका पाते हैं, लोगों को बच्चों को स्कूल भेजने के लिए समझाते हैं। पर उनके सुझाव का कोई असर लोगों पर पड़ते दिखाई नहीं देता। उनका यह स्वभाव लोग पसंद नहीं करते। बच्चे अगर स्कूल में जाएंगे, तो कमायेगा कौन, खायेंगे क्या? एकदिन जहरुल ने उनका अच्छा अपमान किया था। मास्टर स्कूल के किसी काम के लिए सुबह ही शहर के लिए निकले थे। सात बजे की बस को पकड़ने के लिए मास्टर चौक में खड़े हैं। जहरुल भी अपनी सात-आठ साल की बेटी को लेकर वहाँ आ पहुँचा। मास्टर ने उससे पूछा-'इतनी सुबह बच्ची को लेकर कहाँ निकला जहरुल?'

'शहर के लिए निकला हूँ मास्टर।' 'कोई काम होगा ?'

'एक अच्छी खबर है। हमारे यहाँ के मिनिस्टर के वहाँ इसे काम मिला है। महीने में दो सौ देंगे।' 'तुमलोग दूसरों का ही बोझ ढोते रहोगे क्या ? अपने बारे में कब सोचोगे ? अभी इनके पढ़ने का समय है।' 'ये सब बातें हमारे लिए नहीं हैं। महीना खत्म होते न होते पैसा तुम्हारे घर आ जाता है। हमारे बच्चे काम नहीं करेंगे तो हम खाएँगे क्या?'

'बच्चों को काम में लगाना कानूनन अपराध है न तू? सरकार इसे पढ़ाएगी। इनसे काम करवाना गुनाह है।'- आवेश में मास्टर बोले। उनकी आवाज में आक्रोश था। 'तो सरकार से कहकर तुम हमारे पेट भरने का बंदोबस्त करा दो। खुदा कसम मैं अपने दसों बच्चों को तुम्हारे स्कूल में दाखिला कर दूंगा।'- हल्की सी हँसी के साथ जहरुल बोला। मास्टर को चुभाने के लिए उसने ये सब कह दिया था ताकि आगे मास्टर उसे कुछ न कह पाये। जहरुल अपनी छोटी लड़की को भी कहीं काम में रखने की फिराक में था। अशिक्षित जहरुल के अकाटड तर्क के सामने मास्टर चुप हो गए थे। मानवाधिकार, शिक्षा का अधिकार, बाल श्रम पर पाबंदी आदि बातों से इन लोगों का दूर-दूर तक रिश्ता नहीं है। जीवन नदी के तेज धार में किसी तरह जीवित रहनेवाले जहरुल जैसों का व्यावहारिक ज्ञान सब प्रकार के अधिकार और कानून के ऊपर अवस्थान करता है। समस्याओं को सतही स्तर पर देखकर नीति बनाने से समाधान नहीं मिलता। तह तक जाकर मूल में ही उनका उपचार करना होता है। पर नेताओं को राजनीतिक जीवन में टिके रहने के लिए समस्याओं को उसी प्रकार जिंदा रखना जरूरी होता है, जिस प्रकार बीमा से लाभ उठाने के लिए नियमित रूप से किस्त देते रहना जरूरी होता है। मास्टर ने अपने समाज की सभी ध्यान-धारणाओं को चुनौती देकर बेटी अफरीदा को पड़ोस के गाँव के सरकारी स्कूल में दाखिला करा दी थी। अफरीदा इस गाँव की स्कूल जानेवाली पहली लड़की थी। इस घटना के बाद मास्टर की अच्छी खिल्ली उड़ी थी....मास्टर का दिमाग खराब हो गया कि बेटी को पढ़ाने के लिए दूसरे गाँव में भेज रहा है। औरत जात है, घर

में रहे, चूल्हा-पानी का काम सीखे और कहीं किसी के माथे डाल दे, बात खत्म। क्या जाने कहाँ क्या गुल खिलाएगी। गाँव की इज्जत मिटी में मिलाकर रहेगी। लड़की कब हाथ से फिसल जाएगी बाप को पता ही नहीं चलेगा। उस दिन बड़ा मजा आएगा। मास्टर का स्पष्ट विचार था कि उनकी बेटी भी समय के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ेगी, वह गाँव की दूसरी लड़कियों से अलग पहचान बनाएगी। मास्टर के इस निर्णय ने गाँव वालों के अहं को चोट पहुँचाई थी। तभी से सबकी निगाहें अफरीदा पर टिकी थीं। और अफरीदा ने भी अपने परिवार के संस्कार से एक आदर्श लड़की के रूप में खुद को गढ़ा था। मास्टर अबतक सिद्ध करते आए हैं कि बेटी को लेकर किया गया उनका निर्णय बिलकुल सही था। पर आज वे अधीर हैं। यदि बेटी का रिजल्ट अच्छा नहीं हुआ तो इस गाँव में उन लोगों का जीना हराम हो जाएगा।

जब अफरीदा का रिजल्ट गाँव पहुँचा, गाँववालों की बोलती बंद हो गयी। गलियों में बतियाते लड़कों, औरतों और बूढ़ों के झुंड अकस्मात अदृश्य हो गए। रिजल्ट आने के साथ ही सब मास्टर के घर के सामने आतिशबाजी करेंगे, इसी विचार से लड़कों ने बम का जुगार कर रखा था। सबको अनुमान था कि अफरीदा पास नहीं करेगी और इसके लिए गाँव वालों ने दुवा भी की थी । पर सभी अटकलों पर विराम चिह्न लगाकर अरीदा ने बड़े ही अच्छे अंकों के साथ दसवीं पास किया। मास्टर की छाती सौड़ी हो गयी। बेटी ने सफलता के इनाम के रूप में बाप से शहर में पढ़ने की गुहार लगाई। मास्टर ने हामी भरकर उसे शहर के सबसे बड़े कॉलेज में दाखिला दिलाने का निर्णय लिया। पारंपरिक विचारवाले मास्टर के माँ-बाप ने पोती का विवाह कराने का आग्रह किया। लड़की है, इतना पढ़ेगी तो निकाह करनेवाला भी नसीब नहीं होगा। मास्टर ने किसी की नहीं सुनी। बड़े शहर में पढ़ने से बेटी का भविष्य चमक जाएगा, इस पर मास्टर को कोई संदेह नहीं था। उन्होंने बेटी का भविष्य प्रत्यक्ष किया...अफरीदा ने अच्छी तरह सारी परीक्षाएँ पास की, वह डॉक्टर बनी है, मास्टर ने एक अच्छे डॉक्टर के साथ उसका निकाह कराया है, अफरीदा के कारण मास्टर के खानदान का मान बहुत बढ़ गया है। शहर के बड़े कॉलेज में अफरीदा की दाखिला हो गयी। कॉलेज के हॉस्टल में उसे छोड़ने जाकर उन्होंने वार्डेन से मुलाकात की 'मेरी बेटी आज से आपकी बेटी है। मैं अपने घर की इज्जत आपके हवाले छोड़ रहा हूँ। आप अफरीदा का ख्याल रखिएगा।' 'हॉस्टल की हर लड़की मेरी अपनी बेटी ही हैं। माँ-बाप मेरे भरोसे से यहाँ छोड़ जाते हैं। यहाँ जो भी आती है, भविष्य बनाकर जाती है। अगर आपकी बेटी खुद ठीक रहे, उसे कोई कुछ नहीं कर पाएगा। आप निश्चिंत रहिए।'

मास्टर ने वार्डेन से आज्ञा ली। वहाँ से निकलते समय गेट में मास्टर की भेंट चौकीदार से होती है। वह हॉस्टल का सबसे पुराना चौकीदार है, अब बूढ़ा हो गया है। पिछले पैंतीस साल से वह इन लड़कियों की देखभाल कर रहा था। मास्टर ने उसकी अनुभवी आँखों को पढ़ा और कहा-' मेरी बेटी आज से यही रहेगी। आप इस का ख्याल रखिएगा। पहली बार यह घर के बाहर अकेली रहने आयी है।' मास्टर ने बूढ़े की मुठ्ठी में सौ रुपये का एक नोट थमा दिया। अफरीदा से विदा लेते समय उनकी आँखें भर आयीं। वे कुछ नहीं बोल पाये और बेटी की तरफ देखे बिना ही चल दिये। उन्होंने पीछे से सिसकने की आवाज सुनी।

दो

हॉस्टल का माहौल अफरीदा को अजीब सा लगा। तीन मंजिले उस इमारत में छोटे-छोटे कई कोठे हैं। एक-एक कोठे में पाँच-पाँच लड़कियाँ रहती हैं। सबके लिए एक मेज, एक कुर्सी, एक छोटा-सा पलंग हैं। उसके लिए अपना घर, घरवाले और गाँव के बदले इस कोठे, हॉस्टल और शहर को अपनाने का समय था। उसे माँ याद आयी और आखों से आँसू टपकने लगे। माँ के शब्द उसके कानों में गूंजने लगे 'तूने चाहा, इसीलिए हम इतना दूर तुझे भेज रहे हैं। शहर की बात है। सावधानी से रहना, घर की इज्जत का ख्याल रखना।' बाजार से बाप ने जो जरूरी सामान बाल्टी, मग, साबुन, तकिया, तोशक आदि उसके लिए खरीदे थे, सब उसके पलंग के पास ढेर होकर पड़े थे। इन सबमें ही अफरीदा को बाप अनुभूत हुए। उसके कोठे में और एक नई लड़की आई थी, वह भी अपना सामान समेट रही थी। उसका चेहरा भी उदास था, घर छोड़ने का दर्द उसे भी सता रहा था। टक् टक् टक् ! दरवाजे पर पड़ी टोकर से दोनों नवागता सिहर उठीं। दोनों ने आँखे पोंछ लीं। दरवाजे से एक लड़की अंदर घुस आई-'खराब लग रहा है न ! लड़कियाँ जब हॉस्टल आती हैं, तब घर छोड़ने के दुख में रोती हैं, जब घर जाती हैं, हॉस्टल छोड़ने के दुख में रोती हैं। हम जहाँ रहते हैं, वह जगह हमारी अपनी हो जाती है। जल्दी ही यह माहौल तुम्हें अच्छा लगने लगेगा। प्रैयर का समय हो रहा है। घंटी लगने पर बाहर ग्रील्ड में आ जाना। उसके बाद डाइनिंग हाल में जान पहचान होगी।'

इतना कहकर लड़की निकल गई। इन दोनों नवागताओं के दिल धड़कने लगे। जरूर यह सीनियर होगी, रैगिंग के लिए बुलाया होगा। अचानक अफरीदा का चेहरा खिल गया। क्योंकि रैगिंग करना आजकल एक अपराध है। ऊपर से वार्डेन का क्वार्टर भी डाइनिंग हाल के पास ही है। इसीलिए वे सुरक्षित हैं। अफरीदा ने नई रूममेट से बात करनी शुरू कर दी। वह बिजली है, वह भी अंदरूनी गाँव से आई है। घंटी लगते ही दोनों प्रैयर के लिए बाहर निकलीं। हॉस्टल से सटे मस्जिद से आए अजान से अफरीदा का मन शांत हो गया.....अल्लाह हु अकबर.... । उसने ओढ़नी माथे तक खींच ली। अजान के तुरंत बाद पंक्तियों में खड़ी लड़कियों ने प्रयर शुरू किया-

कृपार सागर दैवकी नन्दन
पूरिओ मानर काम। भकतर संग
सदा न छाड़ोक मुखे तुवा गुण नाम

पुरानी छात्राओं के साथ अफरीदा समेत नई छात्राओं ने भी कृष्ण-स्तुति में योगदान दिया। अगला कार्यक्रम डाइनिंग हाल में था। चाय के साथ वहाँ मीटिंग शुरू हो गई । तीसरे वर्ष की एक छात्र ने खुद को मनिट्रेस बताकर हॉस्टल के नियम के बारे में बताया। जरूरत पर उसे बात करने के लिए कहा गया और जान-पहचान के बाद मीटिंग खत्म हुई। धीरे-धीरे अफरीदा इस नए माहौल से परिचित होने लगी। सुबह की चाय, गुसलखाना रखना, नहाना, भात खाना, कॉलेज जाना, शाम का प्रैयर, रात को माँ-बाप से फोन में बातें करना, फिर रात का खाना और सोना यही हॉस्टल के दैनिक कार्यक्रम की सूची है। हॉस्टल में गुसलखाना रखने का अद्‌भुत नियम है। जो पहले पानी से भरा

हुआ बाल्टी गुसलखाने में रखती है, नहाने का पहला हक उसी का होता है। इसी तरह भोर से गुसलखाने में बाल्टी रखने का सिलसिला शुरू हो जाता है और बाल्टियों की लंबी पंक्ति लग जाती है। बाल्टी के नंबर के अनुसार लड़कियाँ नहाने जाती हैं। जरूरी अवस्था में अगर किसी को पहले जाना पड़े, तो उसे अपने बाल्टी से पहले जितनी बाल्टियाँ हैं, उनके मालिकों की अनुमति लेनी होती है। डाइनिंग हल में पहले सीनियर खाना खाती हैं, उनकी मर्जी से टी.वी. के चेनल बदलते हैं।

अफरीदा इस्लाम में विश्वास करनेवाली एक चरित्रवान लड़की है। शहर की आबो-हवा से वह परिचित हो रही है। वह अपने सहपाठियों के हावभाव से दंग रह जाती है। उसे समझ नहीं आता कि क्यों माँ-बाप को वे बाइक खरीदने के लिए विवश करते हैं, क्यों पचीस-तीस हजार रुपयों का मोबाइल उन्हें चाहिए, बीस रुपये में कैंटीन में पेट भरकर खाने की व्यवस्था होने पर भी क्यों वे रेस्टोरेंट में सैकड़ों रुपये खर्च करते हैं, क्यों शुक्रवार को क्लास छोड़कर ये सिनेमा हल भरते हैं, क्यों पार्कों में ये एक दूसरे से चिपकते बैठते हैं। उसके सोच और वर्ताव ने पहले एक महीने में ही दूसरे छात्र-छात्राओं से उसकी अलग पहचान बन गई, पुराने ख्यालों की लड़की का लेबेल उस पर चिपक गया। कॉलेज और हॉस्टल दोनों जगहों में वह अकेली पड़ गयी।

हॉस्टल की लड़कियों के अड्डे का मूल विषय प्रेम होता है। प्रेमिकों के फोन में वे रात काट देती हैं। पहले स्वप्नभंग और फिर विरह में निद्राहीन रात काटनेवाली लड़कियाँ उसे पागल-सी लगती थी। मान-अभिमान, संसार गढ़ने और तोड़ने की कल्पना में विभोर छात्राएँ उसे प्रभावित करने लगीं। जो जिस माहौल में रहता है, उसके अनुकूल उसकी मानसिक स्थिति होती है। अब अफरीदा को लगने लगा है कि प्रेम पागलपन नहीं है। सोच-समझकर किया गया संबंध प्रेम नहीं होता, गणित होता है। शायद इसीलिए अनेक प्रेमीयुगलों के उम्र, शिक्षा, सौन्दर्य, जात-पात आदि में बेमेल पाया जाता है। रात का खाना खाकर अफरीदा कमरे में घुसी ही थी कि सीनियर रूममेट जुली ने उसे अपने पास बुलाया। अफरीदा के साथ उसका अच्छा संबंध है-'अफरीदा, बॉयफ्रेंड चाहिए क्या?'

अफरीदा सिहर उठी। 'मेरा वो है न, उसने बताया था। मुस्लिम लड़का है। उसे एक लड़की चाहिए, मतलब गर्लफ्रेंड। उसने तुझे देखा है, पसंद भी किया है।' अफरीदा कुछ बोल नहीं रही थी।

'अरे पगली, देखने में हर्ज क्या है? कहाँ तेरे गाँव में ऐसा लड़का मिलेगा? अच्छा लगा तो चलाते रहो, नहीं तो छोड़ देना। तेरा घर यहाँ से बहुत दूर है किसी को पता भी नहीं चलेगा। फिर घर जाके जिससे मर्जी शादी कर लेना। यहाँ अच्छा टाइम पास हो जाएगा।' जवाब दिये बगैर ही वह अपने पलंग तक गई। उस रात अफरीदा को नींद नहीं आई। उसने जिंदगी में पहली बार कुछ अलग सी अनुभूति का एहसास किया। उसे आज जवानी का मतलब मालूम-सा हुआ। उसने सोचा शायद प्यार ऐसे ही होता है। दो दिन बाद वेलेनटाइन डे है। हॉस्टल की सभी लड़कियाँ अपने-अपने प्रेमियों को शुभकामना देने के लिए अपने हाथों से विविध कलकारियों से कार्ड बनाए हैं। अपने हाथों से कार्ड बनाने के दो कारण हैं-पहला उनके पास इतने पैसे नहीं होते और दूसरा तोहफे में अपने हाथ

का स्पर्श होने का मजा ही कुछ ओर है। चौदह फरवरी को कॉलेज और हॉस्टल दोनों सुनसान हो जाते हैं। सभी पार्क, रेस्टोरेंट और सिनेमा घरों में भीड़ करते हैं। शाम तक हॉस्टल का रसोइया सारा खाना डास्टबिन में फेंकता हुआ बड़बड़ा रहा था-'देश के आधे लोग भूखे मर रहे हैं और यहाँ इतना खाना फेंका जा रहा है। खाना थोड़ा भी कम होने से लड़कियाँ हंगामा करती हैं। इतना अत्याचार करती हैं, कुछ बोलने से भड़क जायेंगी। खाना खाती भी नहीं और पकाने को मना भी नहीं करती। पता नहीं कौन-सी शिक्षा ये ले रही हैं! पढ़-लिखकर ये क्या करेंगी?' लड़कियाँ एक रंगीन दिन की समाप्ति के बाद हॉस्टल पहुँचीं। शाम को डाइनिंग हॉल में सब लड़कियाँ अपने-अपने दिन का अनुभव एक दूसरे से सांझा कर रही थीं। दिन कहाँ कैसे काँटा, क्या खाया, तोहफे में क्या दिया और क्या पाया, ये सब बातें हो रही थीं। अफरीदा और अफरीदा जैसी कुछ लड़कियाँ चुपचाप ये सब देख और सुन रही थीं। अरीदा इन लड़कियों के भाव-जगत में विचरण कर रही थी कि इतने में एक सीनियर लड़की ने उसे टोका-'अपी, तू भी बता न। क्या किया तूने दिन में? 'उसके कुछ बोलने से पहले किसी की आवाज आई- 'ये बोर क्या करेगी, खाया और सोया होगा, पढ़ा भी होगा ! ये क्या जाने वेलेंटाइन डे किस वैज्ञानिक का नाम है ! किसी को कुत्ते ने काँटा है क्या कि इससे प्यार करेगा?' ठहाके से पूरा हॉस्टल गूंज उठा। मजाक में कही गई ये बातें उसके दिल में तीखे तीर की तरह चुभ गईं। वह घायल पक्षी की तरह छटपटती हुई अपने कमरे में चली गई। हॉस्टल का माहौल कुछ अलग तरह का होता है। हॉस्टल में समाज की छवि मिल जाती है, यह समाज का छोटा संस्करण सा होता है। हर एक लड़की अपने परिवार के संस्कार के साथ यहाँ आती है। कुछ लड़कियाँ खाने-पीने और घूमने-फिरने में समय बिताती हैं, तो कई खेल-कूद में। कई गाने-बजाने में, तो कई पढ़ाई में आगे आती हैं। पढ़ने में तेज लड़कियों को ही हॉस्टल में दाखिला मिलता है। कम उम्र में लड़कियाँ यहाँ आती हैं, तो उनका हृदय साफ-सुथरा और निर्मल होता है। चीजों को वे सहज-सरल ढंग से देखती हैं। कहीं कुछ जटिलता उन्हें दिखाई नहीं देती। वे अपने मन का मालिक होती हैं। जो चाहे कह दिया, जो चाहे कर दिया। अभी झगड़ा और एक पल बाद गले लगना, गाली-गलौज, मजाक, खिल्ली उड़ाना ... ये सब हॉस्टल के नियमित दृश्य हैं। कब किस की बारी आती है, कहा नहीं जा सकता। आज सबके सामने अफरीदा की अच्छी खिल्ली उड़ गई। निसंगता में कटे उबाऊ दिन और फिर शाम की इस ग्लानि को वह झेल नहीं पा रही थी। वह अस्थिर थी, व्यथित थी। उसने दिमाग को ठंडा करके पूरे परिवेश में अपनी जगह को टटोला। उसने पाया कि शायद इस परिवेश में वह मेल नहीं खाती। उसकी सहेलियाँ अपने प्रेमियों के साथ यहाँ-वहाँ जाती हैं। वे इनका ख्याल रखते हैं। ये जोड़ियाँ बहुत खुश देखे जाते हैं, देखने में भी अच्छे लगते हैं । इस के विपरीत वह निसंग और नीरस जिंदगी काट रही है। अफरीदा के दिल में एक बात घर करने लगी....प्रेम....हाँ प्रेम...जीवन में प्रेम करना जरूरी है। निसंग होकर जीना मुश्किल होता है। सहेलियों की कटूक्ति वह और नहीं सहेगी। उसमें भी दूसरी लड़कियों की तरह गुण हैं, जिससे कोई न कोई प्रेम की याचना करे। उसके मन में एक तृष्णा जगी...कोई उसे भी चाहे, उसका ख्याल करे। जवानी को अनुभव करने का हक उसे भी है। उसने तय किया कि वह प्रेम का

रास्ता अपनाएगी। प्रेम और पढ़ाई दोनों को वह समांतराल रूप में आगे बढ़ाएगी। वह अब और पुराने ख्यालों की लड़की बनके नहीं रहना चाहती। उसने जुली की ओर देखा। पूरा दिन घूम-फिरकर आने के बाद वह थक चुकी थी, खाने-पीने का झंझट भी नहीं थी, तो वह सो गई थी। उसने जुली को बुलाया-'जुली दी ...जुली दी।' 'सोने दे।'-भड़ककर जुली बोली।

'मुझे आपसे कुछ बातें करनी थीं।' -संकुचित होकर उसने कहा। 'कल बात करूंगी। अभी मेरा दिमाग मत खा।' 'बात यह है कि आपने जो उस दिन एक लड़के की बात की थी, मेरे लिए...वह...'अब जुली की नींद टूट गई।' मैं उनसे एक बार मिलना चाहती हूँ'। 'ओहो। तो तू भी पटरी पर आ गई। ठीक है यदि वह अब भी खाली है तो बात पक्की समझ। बस एक पार्टी देनी होगी।' जुली फिर से सो गई। अफरीदा उस रात सो नहीं पायी। उसने खुली आँखों से नई जिंदगी का सपना बुनना शुरू किया। अगले दिन हॉस्टल में यह खबर आग की तरह फैल गई कि अफरीदा भी बॉयफ्रेंड की तलाश कर रही है। उस दिन का अड्डा अच्छा जमा था। अफरीदा के लिए खबर यह थी कि लड़का इन दिनों बड़ा व्यस्त है । कुछ दिनों के बाद ही वह अफरीदा से मिल पाएगा। प्यार में उथले अफरीदा के दिल में पानी फेर दिया। इस तरह लगभग दो महीने चले गए और पहले जुली से बीच-बीच में उसे उसकी खबर मिलती रही, फिर दोनों के बीच फोन में बातचीत शुरू हो गयी और उससे मिलने से पहले ही उसने अफरीदा के दिल पर अपना घर जमा लिया। पूजा के बंद में घर जाने से अगले दिन लड़के ने खुद फोन कर अरीदा से मिलने की इच्छा जताई। अफरीदा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसके कानों में उसके प्यार भरे शब्द गूँजते रहे.....'मैं तुम्हें लेने आऊंगा। तैयार रहना...'। वह उसे कल लेने आएगा, उसने उसे अपने किसी दोस्त के घर ले जाने की बात की थी। पहले किसी के घर जाने की बात उसे ठीक नहीं लगी थी। किसी अनजाने के साथ अनजानी जगह में उसके घरवाले कभी कहीं जाने नहीं देते । ऊपर से उससे भी वह पहली बार मिलने जा रही है। फिर अफरीदा को लगा कि वह तो अब अपना ही है और उसका दोस्त अपरिचित कैसे हुआ? विश्वास पर ही तो दुनिया कायम है। विश्वास की मजबूत नींव पर बनाए हुए रिश्ते का महल भी मजबूत होता है। शंका पर आधारित कोई रिश्ता आगे नहीं बढ़ सकता। मन में विश्वास लिए हाथ में हाथ धरे ही प्रेम मंजिल तक पहुँचता है। यूं भी इतने दिनों के बाद उसने मिलने के लिए बुलाया है, तो मना करने से बात बिगड़ सकती है। यह मौका वह खोना नहीं चाहती। उसका प्रस्ताव वह ठुकरा नहीं सकती। सुबह के इंतेजार में करवट बदलकर उसने रात काट दी । रात में उसने एक कविता भी लिख डाली- काश मुझे पता होता...

काश मुझे पता होता कि ये हसीन पल प्रेम की देन है तो मैं प्रेम से अब तक दूर न भागती...

काश मुझे पता होता हृदय के ज्वारों के लक्ष्य तुम हो तो मैं तुम्हें खोज लाती....कहीं से भी

तुम रोशनी हो मेरी जिंदगी की, रोशन करो मुझे आकंठ पानी में डूबी फिर भी प्यासी हूँ, तृष्णा ने मुझे निगल लिया है... मैं पतंगा बन जलती रहूँ तुम्हारे लिए जिंदगी भर कविता खत्म होते-होते उसने भी हल्की ऐसी झपकी ली।

सुबह जल्दी उठकर उसने खुद को तैयार किया। एक पवित्र रिश्ते की ओर वह बढ़ रही है, इसीलिए पहनने के लिए उसने एक सफेद साड़ी निकाल ली। समय से पहले ही तैयार होकर हॉस्टल के गेस्ट रूम में बैठ उसका इंतेजार करने लगी। ठीक समय पर उसे लेने लड़का हॉस्टल का गेट पहुँचा। गाड़ी से उतरकर एक लाल रंग का गुलाब अफरीदा की ओर आगे बढ़ाता हुआ वह बोला– 'मेरे जीवन में तुम्हारा स्वागत है।'अफरीदा का मन खिल उठा। हाँ, वही उसकी कल्पना का पुरुष है...। उसने भी जीवन की पहली हलचल, पहली अनुभूति को कविता के रूप में एक लिफाफे में बंद करके उसे दी। गाड़ी में चढ़ने से पहले अफरीदा ने हॉस्टल की ओर मुड़ कर देखा। लड़कियाँ अफरीदा को ही देख रही थीं। सबकी ओर उसने नजर दौड़ाई...मानो कह रहा हो...देखो मेरा आशिक मुझे गाड़ी से लेने आया है। मैं तुम किसी से भी कम नहीं हूँ। इतने में अफरीदा की नजर बूढ़े चौकीदार पर पड़ी। अफरीदा का बाप जब भी हॉस्टल आते हैं, इस चौकीदार को बेटी का ख्याल करने के लिए आग्रह कर जाते हैं। बूढ़ा अफरीदा को देख रहा था। उसे आश्चर्य हुआ, इससे पहले कि वह अफरीदा को कुछ कहे अफरीदा ने उससे कहा– 'काका मैं जा रही हूँ।' और वह गाड़ी में चढ़ गई। बिजली गति से चलती हुई गाड़ी पल भर में बूढ़े की आँखों से ओझल हो गई।

तीन पूजा के बंद में अफरीदा घर गई थी। तीन महीने बीत गए और वह अब तक हॉस्टल नहीं आयी। हॉस्टल की किसी से उसकी बात भी नहीं हुई है। कई लड़कियों ने उसे फोन किया था, पर उसने किसी का फोन नहीं उठाया। उसके बाप ने यह जानकारी दी रखी थी कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है। उसकी पहली परीक्षा अच्छी हुई है। वार्षिक परीक्षा के लिए अफरीदा के बाप के कहने से जुली ने प्रपत्र भरा दिया था । चार दिन बाद परीक्षा है, अब तक भी अफरीदा की कोई खबर नहीं है। जुली को पहले शंका थी और उसे अब विश्वास होने लगा कि अफरीदा के साथ कुछ न कुछ तो हुआ है। पर क्या हुआ है वह समझ नहीं पा रही थी।

मनुष्य का जीवन नदी की धारा की तरह है। वह कभी रुकता नहीं। रास्ते में कितने ही बांध न दिये जाएँ, उसे अपना रास्ता चुनना होता है। हॉस्टल के हल्के फुल्के माहौल के हँसी-मजाक ने अफरीदा के जीवन की गति बदल दी। रंगीन जीवन का सपना देखनेवाली लड़की अब बिलकुल रंगहीन हो चुकी थी। गतिशीलता जिंदगी है और स्थिरता मृत्यु है। समय के थपेड़ों को जीतकर आगे बढ़ जाना ही जीवन का दूसरा नाम है। मृगतृष्णा मृग का भ्रम है, अपराध नहीं। जरूरी नहीं कि मृग एक बार रेगिस्तान में फँस जाए तो वह तालाब, नदी का पानी कभी न खोजे।

इतवार का दिन था। सुबह आठ बजे आफ़ि मास्टर हॉस्टल आ पहुँचे। वे वार्डेन से अफरीदा का हॉस्टल सीट वीथड्रॉ करने के लिए आए थे। मास्टर की बातों से वार्डेन चौक पड़ी–'–आप लड़की की पढ़ाई क्यों रोक रहे हैं?'

'मैं कहाँ उसे मना कर रहा हूँ ! वह अगर खुद नहीं पढ़ेगी मैं क्या कर सकता हूँ?'

'उसने क्यों मना किया?''वह कुछ नहीं बताती। जब से यहाँ से गई है, उसने चुप्पी साध ली है। पता नहीं कौन सा गुनाह किया था कि ये दिन देखने पड़ रहे हैं!' मास्टर की आवाज भर आई। उन्होंने आँखें पोंछ लीं। 'मैं उससे एक बार बात करना चाहती हूँ।'

'आपके सामने हाथ जोड़ता हूँ, आप ऐसा न करें।'

वार्डेन ने बार-बार मास्टर से कहा कि लड़की के साथ गलत हो रहा है। पर बच्चों के लिए माँ-बाप से बढ़कर शुभचिंतक कौन हो सकते हैं? कहते हैं दुनिया में माँ-बाप अपनी संतान को और शिक्षक अपने छात्र को अपने से आगे बढ़ता हुआ देखकर खुश होते हैं। यहाँ अफरीदा के भविष्य को लेकर मास्टर और वार्डेन दोनों के विचार अलग-अलग थे। मास्टर वार्डेन को समझा नहीं पा रहा था और वार्डेन को मास्टर नासमझ लग रहे थे। मास्टर ने कहा-'पूजा के बंद में जब से वह घर गई थी, तब से उसने किसी से बात नहीं की, खाना-पीना छोड़ दिया । हम सब ने उसे पूछा, बहलाया, फुसलाया पर कुछ काम न आया। भाभी, फफूी, चाची, दादी, नानी, सहेली सबने उससे साझा करने की कोशिश की। उसके मुंह से एक भी शब्द निकला। हकीम, ओझा सब हार मान गए। सूखकर आधी हो गई है।' पत्थर-सी वह बैठी रहती है, आँसू की झड़ी लगी रहती। वार्डेन को वीथड्रॉ स्वीकार करना पड़ा। वार्डेन के मन में मास्टर की बातें आ रही हैं । एक उज्ज्वल सितारा बुझ गया। भोली मासूम अफरीदा के साथ ऐसा क्या हुआ कि वह गूंगी हो गई। अगले सुबह उन्होंने अफरीदा के कमरे की लड़कियों को तुरंत बुला लिया। चारों लड़कियां वार्डेन के सामने एक ही पंक्ति में खड़ी हो गईं। अनुसंधानमूलक स्वर में वे बोलीं-'अफरीदा जब से यहाँ से गई है, वह न खाती है, न पीती है। उसने हॉस्टल छोड़ दिया है। तुम्हें पता है ?' 'हाँ मेम सुना है।' किसी एक ने उत्तर दिया। 'क्यों कुछ बताओगी भी?' चारों लड़कियाँ चुप हैं। 'उसके साथ यही कुछ हुआ होगा ! कहीं तुमलोगों के साथ.....'

हॉस्टल का अनुशासन बड़ा कड़ा है। गलतियों के लिए कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है। उन लोगों ने देखा कि वार्डेन छोड़नेवाली नहीं है। 'घर जाने से एक दिन पहले वह एक लड़के से मिलने गयी थी। पहले जुली ने मुँह खोला।' फिर एक-एक कर सब बोलने लगीं। 'वह पहली बार उससे मिलने गई थी। 'अबकी बार बिजली बोली। 'सुबह वह अफरीदा को ले गया था। उसकी गाड़ी में और भी लड़के हमने देखे थे।' तीसरी लड़की ने कहा। 'शाम को देर से वह पहुँची थी। आते ही वह सो गई, हमसे बात नहीं हुई। अगली सुबह हमारे उठने से पहले ही वह घर जा चुकी थी।' चौथी लड़की ने दबे स्वर में कहा। इतनी जानकारी वार्डेन के लिए काफी थी। जो बात आसिफ मास्टर छुपाने की कोशिश कर रहे थे, लड़कियों के मौन होठ उसी का बयान कर रहे थे। लड़कियाँ चली गईं और वार्डेन अपनी कुर्सी पर जड़वत बैठ गईं। शब्दार्थ यह एक असमीया प्रार्थना है, जिसका तात्पर्य है-दैवकी के नन्दन कृपा का सागर हैं, वे मनोकामना की पूर्ति करें। भकृजनों का संग कभी न छूटे, मुँह से तुम्हारे गुण का ही बखान हो।

डॉ. रीतामणि वैश्य, मो0 : 9435116133
ई-मेल : ritamonibaishya841@gmail-com

रूपांतरण

डॉ. दीप्ति गुप्ता

हीरा बीहड़ जंगल में पेड़ के नीचे लूट का माल फैलाये बैठा था। उसमें कुछ चीजे तो ऐसी थीं जो देखने में बड़ी खूबसूरत और मन लुभाने वाली थी किन्तु उनका वह उपयोग न जानता था। इसके अलावा कीमती जेवर, घड़ियाँ, कपड़े, नोटों से भरे पर्स - वह इन सबको छाँट-छाँट कर अलग-अलग ढेरियाँ बना रहा था। ढेरियाँ बनाकर उसने उन सबकी अलग-अलग पोटलियाँ बाँध बना दीं और उन पोटलियों को एक बड़ी सी मजबूत चादर में बाँध कर उसे अपने सिर के नीचे तकिया बनाकर, पेड़ की छाँव में लेटकर, अपने साथियों - मुश्ताक और भैरव की प्रतीक्षा करने लगा। सहसा ही उसकी बन्द आँखों में पहाड़ों की घाटी में बसे अपने छोटे से गाँव और उस गाँव में गरीबी से भरे अपने घर की तस्वीरें उभरने लगी। कच्ची मिट्टी की दीवारों और टूटी टीन की छत वाला उसका एक कमरे वाला छोटा सा घर - जिसमें उसने अपने माँ बाप और छोटे भाई के साथ पूरे 10 वर्ष, दुनिया के कपट से बेखबर, भोले-भाले ढंग से जीते हुए बिताए थे। माँ की याद आते ही उसकी आँखें आज भी नम हो जाती हैं। उसे माँ से बड़ा लगाव था। माँ में उसकी दुनिया बसती थी। छोटा भाई 'टुलू' न जाने कहाँ होगा अब ? तभी घोड़े की टापें हीरा को उसके घाटी में बसे घर से निकाल कर जंगल में वापिस ले आई। मुश्ताक और भैरव खाना पानी लेकर आ गए थे। हीरा उठ बैठा और बोला - कुछ गड़बड़ तो नहीं हुआ? ढाबे वाले ने कुछ उल्टा सीधा, फालतू का जवाब तलब तो नहीं किया?

नहीं, गुरु ! जिस दिन फालतू बोलेगा, उस दिन न वो रहेगा न उसका ढाबा- यह कहकर मुश्ताक ने जोर का ठहाका लगाया।

भैरव मुस्कराते हुए खाने का सामान खोल कर सामने रख रहा था। हीरा ने पानी की बोतल से मुँह हाथ धोकर, फिर हाथ की ओक बनाकर गटगट पानी गटका। इसके बाद तीनों खाने पे टूट पड़े।

हीरा और उसके साथी उस भयानक जंगल में जानवरों के साथ रहकर जानवर जैसे ही हो गए थे। हिंसक, कठोर और बेरहम। उनकी आत्मा, उनकी संवेदना मानो पूरी तरह मर चुकी थी। रात में गुजरने वाले वाहनों को नित नई तरकीबों से रोकना और उनमें बैठे लोगों को बेरहमी से मारपीट कर उनका माल लूट लेना, यह उनका रोज का काम था। हीरा की कोई खास उम्र नहीं हुई थी। मुश्किल से 28 वर्ष का था। उसकी सुदर्शन आकृति से कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वह कितना क्रूर और निर्दयी है। जन्म से मिली मासूमियत, भोलापन, और सुकोमल सौन्दर्य उसके बाह्य व्यक्तित्व पर-सिर से पाँव तक, मीने की तरह गड़ा हुआ था। वहशी जिन्दगी, बेपरवाह जीवनचर्या, कठोर क्रिया कलापों की

वजह से यद्यपि उस मीने की पपड़ियाँ बनने लगी थी और जगह-जगह से उखड़ने लगी थीं – पर अभी पूरी तरह उसका नामोनिशां मिटा नहीं था। जंगल के पिछले सिरे पर बहने वाली छोटी सी पानी की धार में, जब कभी हीरा अपनी मैली कुचैली कमीज उतार कर, हाथ मुँह धोता हुआ – अर्धास्नान करता तो मटमैले कपड़ों के अन्दर से निकले, उसके गोरे, चम्पई रंग और सुगठित सुडौल शरीर को देखकर भैरव और मुश्ताक अक्सर उसे छेड़ते हुए कहते – उस्ताद तुम तो एकदम हीरो की माफिक चकाचक हो। चाहो तो, राहजनी छोड़ कर फिल्मों में काम कर सकते हो।

मजाक में ही कही गई ऐसी बातों को सुनकर, हीरा दोनों को कठोरता से तरेरता और कहता – ये सब कसीदे पढ़ने की जरुरत नहीं है समझे! आगे से मैं न सुनूँ ऐसी बात मजाक में भी कि राहजनी छोड़ दे तो .....। यह राहजनी मेरी जिन्दगी है, उसी के बल पर मैं जिन्दा हूँ, जी रहा हूँ। तुम दोनों भी इसी की दी हुई खा रहे हो। क्या समझे?

भैरव और मुश्ताक उसके चेहरे पर उभरे कठोर ठन्डेपन को देखकर सकते में आ जाते, ऐसे सहम जाते जैसे हीरा उन्हें उसी पल कच्चा ही चबा जायेगा। वे दोनों हीरा से पाँच – छः साल छोटे थे। उन पर हीरा की हिम्मत, ताकत और हिंसक कठोरता का सिक्का जमा हुआ था। वे तो कभी-कभी अपने गुरु को मस्का मारने की नीयत से, उसके साथ ऐसी छेड़खानी किया करते थे। शायद उनके मन में कहीं यह एक छोटी सी आशा भी छुपी होती थी कि सम्भव है एक दिन इस कठोर लावारिस दबी छुपी जिन्दगी से, वे अपने उस्ताद के बल पर निजात पा ले और एक बेहतर जिन्दगी को अपना कर शान से रहे। पर हीरा की घूरती, तरेरती, हीरे जैसे चमकती, बड़ी-बड़ी आँखें उनकी इस उम्मीद को मटियामेट कर देती। कल रात की राहजनी में हीरा और उसके साथियों को सिवाय किताबों, फाइलों और रजिस्टरों के मोटे-मोटे गठ्ठों के कुछ भी हाथ नहीं लगा था। हीरा खुन्दक खाए बैठा था। कुछ घन्टे बाद जब हीरा के तेवर ढीले हुए तो वह जमीन पर औंधा लेटा हुआ भैरव और मुश्ताक से बोला – देखो, मैं चाहता हूँ कि हम लोग आने वाले सालों में इतना माल इकठ्ठा कर लें कि हमारी बाकी की जिन्दगी आराम से गुजरे। पर अभी हमें कमर कस के इस काम में जुटे रहना है। किसी दिन भी, किसी पल भी, इस काम से पीछे नहीं हटना है। क्या समझे तुम ! समझ गए गुरु हम भी यही सपना देखते हैं। हम कतई इस इरादे से भटकने वाले नहीं- दोनों एक स्वर में बोले । हीरा गर्व से भर कर पलटा और दोनों की ओर अर्थपूर्ण प्यार भरी दृष्टि से देखा। तभी मुश्ताक लम्बी साँस लेता हुआ, अफसोस मनाता बोला – उस्ताद आज तो न जाने कैसी फटीचर गाड़ी हाथ लगी। जितनी ऊँची, उतनी खोटी। ऊँची दुकान, फीका पकवान। मैं तो सोच रहा था कि भारी भरकम 'टाटासोमू' है तो खासा माल हाथ लगेगाय पर उसमें तो कागज, किताबों का कचरा निकला ! धात प्रत्युत्तर में भैरव बोला – तो क्या हुआ, कभी-कभी कचरा भी हाथ लग जाता है। कल 'माँ काली' हमें चौगुना माल देगी। हीरा ने हौसला बढ़ाते हुए कहा – ये हुई न बात । यारों उम्मीद पे दुनिया कायम है। गुस्सा तो मुझे भी बहुत आया था। ये कचरा कूड़ा हाथ लगने पर, लेकिन कभी-कभी हाथ खाली भी रह जाते है! तभी एक साँप सरसराता हुआ पत्तों के बीच लहराता, ऊपर की डाल से हीरा पर लटका, उसे निहारने लगा। धीरे-धीरे उसका फन तन गया। उसकी जीभी रह-रह कर बाहर की ओर लपलपा रही थी। भैरव और मुश्ताक बोले – उस्ताद झपट के उठो। सिर पर साँप लटक रहा है। उसने तुम्हें ठूँग मार दी तो, हम तो अनाथ हो जायेंगे।

हीरा ने उनकी बात का जवाब दिए बिना, पलक झपकते ही अपने को साधते हुए झपटकर साँप को फन से पकड़कर इतनी जोर से खींचा कि भैरव और मुश्ताक तो जड़वत देखते रह गए। फिर हीरा ने आव देखा न ताव और पास पड़े बड़े से पत्थर को उठाना चाहा। नहीं उठा तो भैरव और मुश्ताक ने वो भारी पतथर उठाकर हीरा के इशारे पर साँप के फन पर रख दिया। इतने में हीरा ने जेब से छुरा निकाल कर साँप के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। देखते ही देखते हिलते टुकड़ों, लहराती कटी पूँछ और छितरे खून का एक वीभत्स रक्तिम दृश्य वहाँ उपस्थित हो गया। हीरा के चहरे पर छपी हिंसा ने उस पल उसे 'बेहद डरावना' बना डाला था। शनैः शनैः कुछ देर बाद हीरा फिर पहले की तरह सामान्य हो गया। ह्गुरु ऐसे छुपे रुस्तमों से अपनी जान को बहुत खतरा है - मुश्ताक ने चिन्ता जाहिर की। हीरा ने उसे ढाँढस बँधाते हुए कहा - अरे ये कीड़े तो दिन में कभी-कभी दिख जाते हैं। रात को ये भी अपने बिलों में दुबक कर सोए रहते हैं। हीरा के इन शब्दों ने दोनों को तसल्ली भरी एक राहत का सा एहसास कराया।

घर की गरीबी और भुखमरी से पीड़ित होने पर ही हीरा ने इस काम में हाथ डाला था। इस काम की शुरुआत गाँव के एक छोटे से ढाबे से दो रोटी चुराने से हुई थी। जब इस चोरी का हीरा के बाप को पता चला तो उसने हीरा को बहुत मारा। किसी तरह माँ ने उसे बाप के कर्कश हाथों से बचाया और अन्दर ले जाकर, हीरा को अपनी छाती से चिपटाकर दुख से भरी घन्टों रोती रही। इस घटना के कुछ दिन बाद वह एक दिन शहर जाने वाली बस में चढ़ा और पीछे की सीट के पास नीचे दुबका हुआ बैठा रहा। कन्डक्टर की उस पर नजर भी पड़ी पर न जाने क्या सोचकर उसने उसे कुछ न कहा और इस तरह वह एक अंजान नगरी में जा पहुँचा। वहाँ न जाने कितने दिन तक वह भूखा-प्यासा, धूल फाँकता भटकता रहा । रात को फुटपाथ पर सोता और सुबह होने पर वहीं पालथी मार कर बैठा रहता। वहाँ से गुजरने वाले उसे भिखारी समझ कर उसके सामने पैसे फेंकते निकल जाते। इस तरह से उसकी ओर फेंके गए पैसे उसके स्वाभिमान पर घाव करते। उस सम्वेदनहीन, ठन्डे शहर में और भी न जाने कितने अत्याचारों और हादसों का वह शिकार हुआ और एक के बाद एक घाव, एक के बाद एक चोट उसके दिल में धीरे-धीरे ऐसे नासूर बन गए कि वह क्रूर और वहशी होता गया। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, उस पर समय के साथ-साथ क्रूरता, छल, कपट और कठोरता का आवरण चढ़ता गया। दिन पर दिन ये परते सघन से सघनतर होती गईं। छः साल में वह दुनिया जहान के हर ऐब, हर खुराफात, हर तरह के कष्ट और पीड़ा से अच्छी तरह परिचित हो गया । घर से जब वह भागा था तो उसकी उम्र 10 साल के लगभग थी। अब वह उठते कद, अदम्य उर्जा और शक्ति से भरपूर 28 साल का तेजतर्रार जवान था, जिसने अपने जीवनयापन के अनेक नुस्खे सीख लिए थेय सीख ही नहीं लिए थे अपितु उन्हें क्रियान्वित करने की एक सनकभरी ताकत और हिम्मत भी रखता था। मुश्ताक और भैरव भी उसी शहर की देन थे, जो एक दिन भटकते हुए हीरा से जा टकराए थे। एक दिन तीनों ने मिलकर शहर के एक नामी सेठ के घर डकैती डाली और जेवर व रुपयों सहित 6-7 लाख का माल लेकर जो चम्पत हुए तो इस बीहड़ जंगल में ही आकर साँस ली। उस बीहड़ जंगल में एकाएक एक बच्चें के रोने के स्वर ने हीरा और उसके दोनों साथियों को चौकन्ना बना दिया। तीनों उस भयानक जंगल में उस मासूम रूदन से चकित तो थे ही, साथ ही जहरीले शक से अधिक भरे हुए थे। तीनों ने एक दूसरे को प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। फिर हीरा के इशारे पर, मुश्ताक और भैरव अपने अस्त्र-शस्त्रों से लैस

होकर, दबे पाँव उस ओर बढ़ने लगे, जिधर से बच्चे का रुदन स्वर रह-रह कर उभर रहा था। बीच-बीच में बच्चे की आवाज धीमी होती थी, लेकिन फिर वह जोर से रोने लगता था। जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते जा रहे थे, हीरा के मन में बच्चे के चीख-चीख कर रोने से कहीं अन्दर ही अन्दर बेचौनी उपजने लगी थी। अब वे तीनों बच्चें से इतनी दूर पेड़ों और झाड़यों की ओट में छिपे थे कि बच्चें को अच्छी तरह देख सकते थे। तीनों की पैनी व खोजी दृष्टि आस-पास और दूर-दूर तक चारों ओर बच्चे के संरक्षक - माँ-बाप को खोज रही थीय या फिर पुलिस ने यह कोई चाल चली है इस बियांबान जंगल के गर्भ में छुपकर अपनी दुनिया जीने वाले हीरा और उसके साथियों जैसे गुनहगारों को खोज निकालने की ? उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि एक अकेला, मासूम बच्चा उस जंगल में कैसे आया, कौन बेरहम उसे छोड़ गया या किसी की विवशता ने उस बच्चे को जंगल में मरने को छोड़ दिया?! तीनों परेशान, बेहद परेशान थे कि क्या करे! बच्चे के पास जाए या न जाए...? अब हीरा की बेचौनी बच्चे के सुबक कर रोने से इतनी बढ़ गई कि उसे निर्णय लेना ही पड़ा कि देखी जायेगी, जो होगा, सो होगा - बच्चे का इस तरह रोना बिलखना नहीं देखा जाता ! सब 'ऊपरवाले' पर छोड़, हीरा बच्चे की ओर बढता गया। उसने बच्चे को सामने से जब देखा तो उसके सुन्दर चेहरे को सम्मोहित सा देखता ही रह गया - कितना खूबसूरत, सलोना बच्चा, कैसा सुबक-सुबक कर रो रहा था ! उम्र लगभग 1 वर्ष रही होगी। मुश्ताक और भैरव भी मन ही मन डरे हुए पर चौकन्ने होकर अपने उस्ताद के पास पहुँच गए और हाथ में बन्दूक तानकर हीरा के इधर-उधर रक्षक दीवार बनकर चारों ओर मुड़-मुड़ कर तलाशी सी लेने लगे कि सम्भव है - अब कोई बच्चे के पास खड़े उन तीनों की ओर लफ । पर कोई नहीं आया । हीरा ने प्यार से बच्चे को गोद में उठाया। बच्चा प्यार का स्पर्श पाते ही थोड़ा-थोड़ा आश्वस्त सा, सम्हला सा, बेहिचक उसकी गोद में चला गया - शायद उस डरवाने, सन्नाटें से भरे माहौल में प्यार भरा इंसानी स्पर्श, स्नेह भरी दृष्टि उस मासूम को सम्बल की तरह लगी। देखते ही देखते उसने रोना भी बंद कर दिया। हीरा उसे गोद में भरे, उसके गालों से आँसू पोंछता, अपने ठिकाने की ओर चला। इस पल मानों उसे किसी बात की परवाह न थी, ख्याल न था बस चिन्ता थी, ख्याल था, तो उस प्यारे भोले बच्चे का। मुश्ताक और भैरव तो हीरा का वह वात्सल्य रूप देखकर हैरत में थे। वे दोनों उस मासूम बालक पर कम, अपने उस्ताद के ममत्व पर अधिक मोहित हो रहे थे। तीनों की अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं। उस कँटीले, झाड़ झंरवाड़ों से भरे रुक्ष-खुश्क जगह में एक नन्ही सी जान ने देखते-ही देखते, प्रेम, वात्सल्य और सौन्दर्य की त्रिवेणी सी प्रवाहित कर दी थी। उसकी उपस्थिति से मानों सारा वातावरण सजा सँवरा हो गया था। हीरा, मुश्ताक और भैरव - तीनों जंगलियों की आँखों, चेहरे और हाव-भाव में जो कोमलता, ख्याल, उभर आया था - उससे वह बीहड़ वन भी अछूता नहीं रहा था। मन्द-मन्द बहती बयार, घने पेड़ों की छाँव, प्राकृतिक वनस्पतियों और जंगली फूलों की सहज खुशबू - सब मिला कर वातावरण फ्रुल्लता से भर उठा था। तभी हीरा ने भैरव और मुश्ताक को आदेश दिया कि झपट कर बच्चे के लिए दूध, फल और कुछ बिस्किट के पैकेट लेकर आएँ। भैरव ने याद दिलाते हुए कहा - उस्ताद, अपना खाना भी लेते आए- हीरा हँसा और बोला - हाँ उसे तू कैसे भूल सकता है, आकाश टूट पड़े या धरती फट जाए, पर खाना तुझे जरुर याद रहता है। चलो, अच्छी बात है - हम तीनों में एक तो कम से कम इस भोजन की जरुरत के प्रति इतना

सजग है जिसकी वजह से हमें बिना नागा खाना मिलता है। मुझे तो आज भूख ही नहीं लगी। इस बच्चे ने मेरी भूख ही खत्म कर दी। चलो, लपको और जल्दी से हमारे इस नन्हें मेहमान के लिए सामन लेकर आओ।

उन दोनों के जाने के बाद हीरा कभी बच्चे को पुचकारता, कभी उससे बाते करता, कभी उसे गले लगाता तो कभी उसके बालों को सहलाता, इस तरह न जाने कितना समय बच्चे के साथ हिलने मिलने मे चला गया। कब मुश्ताक और भैरव सामान लेकर आ गए, इसका भी हीरा को पता न चला। उनके आते ही हीरा ने बड़े प्यार से गिलास में दूध पलटा, थोड़ा ज्यादा गर्म लगा तो लोटे में डालकर ठन्डा किया, फिर गिलास में उछाल कर भरा। बच्चा भी ठन्डे होते और फिर गिलास में उछाल कर भरते दूध को धैर्य रखे, चुपचाप मानों इस आस में देखता रहा कि यह अब उसे ही मिलने वाला है। उसका ही भोजन है जो अब उसके लिए तैयार किया जा रहा है उछाल कर। हीरा ने जैसे ही उसे गोद में बैठाकर, गिलास उसके मुँह से लगाया, बच्चे ने आधा गिलास दूध तो बिना साँस लिए पी लिया उसके बाद थोड़ी साँस लेने के लिए उसने अपने नन्हें हाथों से गिलास मुँह से हटाया। बच्चे के मुँह के दोनों ओर और ऊपरी होंठ पर दूध की सलोनी लकीरें बन गई थी। तीनों उसके उस लुभावने रूप को देखकर हँसे तो बच्चा भी प्रत्युत्तर में हँसा – लेकिन अगले ही पल, दूध का गिलास थामे हीरा के हाथ को अपने हाथों से खींचते हुए अपने मुँह की ओर बढ़ाया। हीरा ने भी उसके संकेत को समझकर, तुरन्त बड़े नेह से गिलास उसके मुँह से लगा कर, बचा हुआ दूध भी उसे धीरे-धीरे पिला दिया। बच्चे को तृप्त और खुश देखकर, हीरा मन ही मन एक अनूठा सन्तोष, एक अनोखी खुशी रह-रह कर महसूस कर रहा था। बच्चे का पेट भर जाने से मानो हीरा का पेट भी भर गया था। साथियों ने खाने के डिब्बे खोले और हीरा से शुरू करने को कहा तो चाहते हुए भी हीरा से कुछ भी नहीं खाया गया। किसी तरह एक रोटी खाकर उसने हाथ खींच लिया। हाथ धोकर, कुल्लाकर, उसने बच्चे को उठाया और पेड़ की छाँव में एक चादर बिछा कर बच्चे को उस पर लेटा दिया। नींद से भरा बच्चा, लेटते ही सो गया। हीरा भी उसके पास लेट गया। जब मुश्ताक और भैरव खाना खाकर, उसके पास आकर बैठे तो सोच में डूबा हीरा बोला बच्चे को हमने रख तो लिया अपने पास, पर इसकी देखभाल, इसे पालना-पोसना यह सब बड़ी जम्मेदारी का काम है। तुम्हारी क्या राय है, इसे रखे या कहीं गाँव में रात को छोड़ आएँ? कोई घर परिवारवाला उठाकर ले जायेगा।

मुश्ताक ने कहा – उस्ताद अपने रहने का ठीक इन्तजाम नहीं। यह नाजुक चूजा हमारे साथ सर्दी-गर्मी में परेशानियों को कैसे झेलेगा ? भैरव भी गम्भीरता से बोला – रात को जब हम तीनों काम पर जायेंगे, तो इसे कौन देखेगा ? हमारे पीछे किसी जंगली जानवर ने इसे हजम कर लिया तो ... भैरव हीरा की क्रोध भरी घूरती आँखों को देख, बीच में ही बोलते-बोलते रुक गया। हीरा ने फैसला सुनाते हुए कहा – तुम दोनों की महान सोचों और डरपोक ख्यालों के लिए शुक्रिया! इतने दिन मेरे साथ रह कर भी गीदड़ के गीदड़ रहे। कुछ दिल-जिगर है कि नहीं तुम्हारे पास। मैं तो तुम दोनों को टटोल रहा था। धात ! दोनों में से एक भी किसी काम का नहीं। अब सुनो मेरी बात कान खोलकर कि जब हम राहजनी के लिए जायेंगे तो इस बच्चे को अकेला नहीं छोडेंगे। हम में से कोई न कोई इसके पास रहेगा। मैं हर तरह के झंझट और उन कष्टों के बारे में

इस बच्चे को लेकर सोच चुका हूँ जो इसके कारण हमें उठाने होंगे। इतना कुछ समझते हुए भी न जाने क्यों इसे अपने से अलग करने का दिल नहीं हो रहा। इसके लिए तो हर परेशानी उठाने को तैयार हूँ मैं। पर इसे किसी भी कीमत पर मैं नहीं छोड़ूँगा। हीरा के चेहरे पर पिघलती कठोरता और पसरती कोमलता को देखकर, भैरव हिम्मत करके बोला – उस्ताद ! तुम तो भावुक हो रहे हो ।

यह सुनकर बच्चे को प्यार से निहारता हीरा बोला – इसे देखकर कौन भावुक नहीं हो जायेगा? इसकी मासूमियत में इतनी ताकत है कि मुझ जैसे पत्थर दिल को भी अपनी गिरफ्त में कर लिया इस पाजी ने! क्या करूँ ? दिमाग कहता है कि इसे दूर बस्ती में छोड़, आने वाली सारी मुश्किलों से अलविदा ले लूँ। दिल कहता है कि इस इस नन्हें देवदूत को अपने अलग न करूँ। इसके फूल जैसे हाथ – उनसे जब यह मुझे छूता है तो मैं अपने गाँव के उस घर में पहुँच जाता हूँ जहाँ मेरा बचपन मेरे दिलो दिमाग में आज भी जीवित है। इसमें कभी मैं अपने छोटे भाई की झलक देखता हूँ, तो कभी इसका छूना मुझे माँ की याद दिलाता है। इसने वाकई मेरा जीवन मुश्किल में कर दिया है। अभी तो शुरुआत ही है – आगे यह 'जालिम' क्या–क्या गुल खिलायेगा – यह देखना है मुझे और उसके लिए तैयार भी रहना है। फिलहाल तो मैं इसे अपने दूर नहीं करना चाहता। तुम दोनों को इस कठिन काम में मेरा उसी कादारी से साथ देना होगा, जैसे पहले काम में अब तक देते आए हो। समझे!

भैरव और मुश्ताक ने सिर हिलाकर निष्ठापूर्वक हामी भरी किन्तु हीरा की कायापलट पर अन्दर ही अन्दर अचरज करते बैठे रहे। हीरा ने बच्चे का नाम 'चिराग' रख दिया। उस बच्चे में मानो हीरा को अपना खोया बचपन, भोला भाई, अपनी माँ की कोमलता, सबकुछ मिल गया था। इसलिए ही एकाएक हीरा का बीता माया–मोह और लगाव फिर से उभर आया था। हीरा पैदायशी तो अपराधी नहीं था। समय और किस्मत की मार ने उसे वहशी और जंगली बना दिया था। वरना वह भी इस बच्चे की भाँति कोमलता व मासूमियत से भरा एक निष्कपट इंसान था। हीरा की इंसानियत मरी नहीं थीय वरन् अत्याचारों, भुखमरी, पीड़ादायक हादसों की कठोर चटानों के नीचे दब गई थी। पर उस भोले मासूम 'चिराग' ने अन्जाने ही, बिना किसी जोर जबरदस्ती के हीरा के अन्दर एक के ऊपर एक जमी चट्टानें खिसकानी शुरु कर दी थी। हीरा महसूस कर रहा था कि वे बड़ी तेजी से एक–एक करके गिरती जा रही है। इस बात से वह परेशान भी था, लेकिन बच्चे के सम्पर्क में बने रहने का मोह उसके लिए बड़ा सशक्त और अपरिहार्य साबित हो रहा था। चिराग के मोह जाल में वह ऐसा फँसता जा रहा था जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

देखते ही देखते छः महीने बीत गए। वह बच्चा हीरा के जीवन का ऐसा उजाला बन चुका था, जो जीवन की दूसरी राह पर रौशनी डाल रहा था और उसे अपराधों से भरी जिन्दगी छोड़ने की गुहार लगा रहा था। वह दिन भी आ ही गया जब एक रात आकाश में खिले पूरे चाँद को टकटकी बाँध कर देखते हुए हीरा ने अपना निर्णय दोनों साथियों को सुनाया कि अब वे तीनों बच्चे को लेकर दूर किसी शहर में जाकर बसेंगे। बच्चे को पढ़ायेंगे, लिखायेंगे, उसकी ऐसी परवरिश करेंगे कि वह उनकी तरह अपराधी नहीं, बल्कि अच्छा इंसान बने। उनकी तरह गरीबी व हालात से मजबूर होकर काँटों भरी जिन्दगी न काटे ।

मानो पलक झपकते ही समय बीतता गया और चिराग बड़ा होता गया। आज चिराग 22 साल का एक पढ़ा लिखा ऐसा सुन्दर नवयुवक है, जो आचार व्यवहार में ऐसा सलीके वाला है कि पहली ही मुलाकात में मिलने वाले का दिल जीत लेता है। इस सबका श्रेय जाता है – उसके पालक, उसे संरक्षक हीरा को, जिसने उसे आज इस मुकाम तक पहुँचाया, जिसने उसे उदात्त संस्कार दिए। हीरा भी आज एक 'बालमित्र' नामक समाज सेवी संस्था का संचालक, संरक्षक एवं अध्यक्ष है जिसे हीरा ने अनाथ व गरीब और भटके हुए बच्चों की परवरिश के लिए आज से 10 वर्ष पूर्व स्थापित किया था। अब तक यह संस्था न जाने कितने बच्चों का जीवन सँवार चुकी है, उन्हें एक सधी हुई राह और स्वस्थ जीवन दे चुकी है। 'चिराग' हीरा का प्रेरणा स्त्रोत, उसका कितना सम्मान, कितना आदर करता है, कितना प्यार देता है उसेय इसका पता तब चलता है, जब आज भी हीरा के बिना वह न खाना खाता है, न आराम करता है। खाने का पहला ग्रास वह अपने 'अप्पा' को खिलाता है, फिर खुद खाता है। चिराग के इस तरह प्यार से पहला ग्रास हीरा को खिलाने पर उसकी आँखे छलछलाए बिना नहीं रहती। हीरा को बीहड़ जंगल से निकालकर, अपराधों से विरत कर, जीवन की उजली और स्वस्थ राहे पे लाना वाला चिराग नि:सन्देह उसके जीवन का सूरज हैं। दैवयोग से यदि रोता-बिलखता चिराग उस दिन उसे जंगल में न मिला होता, तो हीरा के पापों का नाश कैसे होता ? उसने मजबूरी और बेअक्ली में जो अपने जीवन के 17-18 साल राहजनी करते बिताए और अपनी उस जीवनधारा के कारण वह जिस पाप का भागी बना – वे सब चिराग ने, देवदूत के रूप में उसके जीवन में आकर धो डाल।

व्यक्ति के लिए जीवन में कोई भी चीज, कोई भी इंसान, कोई भी घटना, अच्छे व उच्च कार्यों व स्वस्थ जीवन की प्रेरणा तभी बन सकती है – जब स्वयं व्यक्ति में उदात्तता व अच्छाई छुपी हुई हो। दूसरे के दर्द से व्यक्ति तभी अभिभूत हो सकता है, जब स्वयं उसमें दर्द को महसूस पाने की सम्वेदना छुपी हुई हो। दूसरे की सच्चाई और निष्कपटता से व्यक्ति तभी प्रभावित होता है, जब सच्चाई और निष्कपटता स्वयं उसकी मन की परतों में दबी हुई हो। ईश्वर ने शायद हीरा के अन्दर परिवर्तित हो जाने की सम्भावना को जानकर ही, उसके दिल की गहराईयों में दबी निष्कपटता, उदात्तता की थाह पाकर ही, उन गुणों को मुखर करने के लिए उस नन्हें बच्चे को रहनुमा बनाकर जंगल में उसकी झोली में डाला था। ईश्वर के ढंग बड़े निराले होते हैं। उसकी कृपा से जैसे क्रौंचवध ने वाल्मीकि का जीवन रुपान्तरित कर दिया था, उसी तरह चिराग हीरा के रुपान्तरण का आधार बन गया। नि:सन्देह उसकी लीला अपरम्पार है। कभी उससे माँगो, मिन्नतें करो, तो वह कुछ नहीं देता और जब उसे देना होता है तो वह बिन माँगे छप्पर फाड़ कर देता है ! उससे बड़ा दानी, उससे बड़ा दंडक, उससे बड़ा चमत्कारी नियन्ता कौन हो सकता है ? हीरा जैसे लोगों के जीवन में आए अद्भुत परिवर्तन को देखकर ही ईश्वर की कारसाजी पर, उसकी महती शक्ति पर मन सोचने को विवश होता है।

डॉ. दीप्ति गुप्ता, 2–ए, आकाशदूत सोसायटी, 12 – ए, नार्थ एवेन्यू, कल्याणी नगर, पुणे : 411006, (महाराष्ट्र), मोबाइल : 098906 33582, E-mail: drdepti25@yahoo-co-in

✧ ✧ ✧

रामदेव धुरंधर जी का परिचय

रामदेव धुरंधर भारत और मॉरीशस के जानेमाने साहित्यकार हैं। आजकल, धर्मयुग, सारिका, नीहारिका, गगनांचल, आधारशिला, प्रवासी संसार, ग्राम संस्कृति तथा अनेकानेक भारतीय पत्रिकाओं में कहानी प्रकाशित। प्रथम भारतीय आप्रवासी मजदूरों के मॉरिशस आगमन और यहाँ जन्मी उन की संतानों (1834-2014) पर आधारित उपन्यास' पथरीला सोना' छः खंडों में प्रकाशित है। 1973 से भारत में पहली कहानी 'धर्मयुग' के फरवरी 1973 के अंक में छपी। तब से निरंतर साहित्य सृजन कर रहे हैं। छः उपन्यास (चेहरों का आदमी, छोटी मछली बड़ी मछली, पूछो इस मोटी से, बनते बिगड़ते रिश्ते, विराट गली के बासिंदे) लघु कथा संग्रह, चेहरे मेरे तुम्हारे, यात्र साथ - साथ, एक धरती एक आकाश, आते - जाते लोग आदि। डा. रामदेवा धुरंधर कई अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों में भाग ले चुके हैं तथा सम्मानित किए जा चुके हैं। प्रस्तुत है प्रतिष्ठित रचनाकार गोवर्धन यादव द्वारा रामदेव धुरंधर से बातचीत का अंश।

बात-चीत

गोवर्धन यादव द्वारा मॉरीशस के प्रसिद्ध रचनाकार रामदेव धुरंधर जी की

गोवर्धन यादव

बाएँ से रामदेव धुरंधर जी
दाएँ गोवर्धन यादव जी

लगभग देढ़-दो सौ साल पहले बिहार से कुछ लोगों को बतौर ठेके पर मजदूर बनाकर मॉरिशस लाया गया था। संभवतः आपकी यह चौथी अथवा पांचवीं पीढी होगी। क्या विस्थापन का दर्द आज भी आपको सालता है?

उत्तर - भारतीय मजदूरों का पहला जत्था सन् 1834 में मॉरिशस लाया गया था। मेरे पिता का जन्म - वर्ष 1897 था। प्रथम भारतीयों का मॉरिशस आगमन (1834), और मेरे पिता के जन्म के बीच 63 सालों का फासला है। तब भी भारत से लोगों को इस देश में लाया जाना जारी था। इस दृष्टि से मेरे पिता मेरे लिए इतिहास के सबल साक्षी थे। भारतीयों को लाकर गोरों की जमींदारी के झोंपड़ीनुमा घरों में बसाया जाता था। तब भारतीयों के दो वर्ग हो जाते थे। एक वर्ग के लोग वे होते थे जिन्हें जहाज से उतरने पर गोरों की ओर से बनाये गये झोंपड़ीनुमा घरों में रखा जाता था। वे

गोरों के बंधुआ जैसे मजदूर होते थे। दूसरे वर्ग के लोग वे हुए जो भारत से सब के साथ जहाज में आते थे, लेकिन काट – छाँट जैसी नीति में पगे होने से वे गोरों के खेमे में चले जाते थे। वे सरदार और पहरेदार बन कर अपने ही लोगों पर कोड़ों की मार बरसाते थे। विस्थापन का दर्द तो उन अतीत जीवियों को हुआ जो इस के भुक्तभोगी थे। मैं उन लोगों के विस्थापन वाले इतिहास से बहुत दूर पड़ जाता हूँ। परंतु मैं पीढ़ियों की इस दूरी का खंडन भी कर रहा हूँ। कहने का मेरा तात्पर्य है उन लोगों का विस्थापन मेरे अंतस में अपनी तरह से एक कोना जमाये बैठा होता है और मैं उसे बड़े प्यार से संजोये रखता हूँ। इसी बात पर मेरा मनोबल यह बनता है कि मैं भारतीयों के विस्थापन को मानसिक स्तर पर जीता आया हूँ। यहीं नहीं, बल्कि मैं तो कहूँ अपने छुटपन में मैं अपने छोटे पाँवों से इतिहास की गलियों में बहुत दूर तक चला भी था।

प्रश्न (2) कहावत है कि धरती से एक पौधे को उखाड़ कर दूसरी जगह लगाया जाता है तो उसे पनपने में काफी समय लगता है। कभी पनप भी नहीं पाता। शायद यही स्थिति आदमी के साथ भी होती है कि उसे विस्थापन का असह्य दर्द झेलना पड़ता है और अनेक कठिनाइयों अवरोधों के बाद वह सामान्य जिंदगी जी पाता है। उन तमाम लोगो के पास वह कौन-सा साधन था कि वे अपने को जिंदा रख पाए और अपनी अस्मिता बचाए रख सके?

उत्तर – जहाज में तमाम उत्पीड़न झेलते ये लोग मॉरिशस पहुँचे थे। अपना जन्म देश पीछे छूट जाने का दर्द इनके सीने में सदा के लिए रह गया था। इस देश में आने पर सबसे पहले इनकी महत्त्वकांक्षाएँ ध्वस्त हुई थीं इसलिए विस्थापन इन्हें बहुत सालता रहा होगा। बहुत से लोग तो बंदरगाह में डाँट – फटकार और तमाम शोषण जैसी प्रवृत्तियों से टूट कर रोने लगते थे और उनके ओठों पर एक ही चीत्कार होता था मुझे मेरे देश वापस भेज दिया जाए। यह मान्यता अब भी मॉरिशस में पुख्त ही चलती आई है कि भारतीयों को इस ठगी से लाया गया था वहाँ पत्थर उलाटने पर सोना पाओगे। उन लोगों की महत्त्वकांक्षाओं में से यह एक रही हो, लेकिन इस का विखंडन तो तभी शुरु हो गया होगा जब वे जहाज में सवार होने पर अत्याचार से चिथड़े हो रहे होंगे। ओछी मानसिकता के बंधन में यहाँ आने पर कौन याद रखता। क्या – क्या पाने इस देश में आए थे। बल्कि जो मन का संस्कार था, इज्जत आबरू का अपना जो अपार पारिवारिक वैभव था सब दाव पर ही तो लगते चले गए थे। तब तो दर्द यहाँ ज्यों – ज्यों गहराता होगा विस्थापन की आह प्रश्न बन कर ओठों पर छा जाती होगी –अपनी मातृभूमि छोड़ने की मूर्खता भरी अक्ल किस स्रोत से आई होगी?

भारत से विस्थापित लोगों का 1834 के आस पास मॉरिशस आगमन शुरु जब हुआ था तब उन में ऐसे लोग तो निश्चित ही थे जो भारतीय वाङ्मय के अच्छे जानकार थे। उन्हीं लोगों ने तुलसी मीरा कबीर तथा अन्यान्य कवियों की कृतियों का यहाँ प्रचार किया था। शादी के गीत, भक्ति काव्य और इस तरह से भारतीय कृतियों और संस्कृति का इस देश में विस्तार होता चला गया था। जो साधारण लोग थे उनके अंतस में भी समाने लगा था कि अपने भारत की इतनी सारी धरोहर होने से हम इस देश में अपने को धन्य पा रहे हैं। कालांतर में भोलानाथ नाम के एक सिक्ख सिपाही ने सत्यार्थ प्रकाश ला कर यहाँ के लोगों को उस से परिचित करवाया। इस देश में यथाशीघ्र आर्य समाज की लहर चल पड़ी थी। यह सामाजिक चेतना की कृति थी। इसकी आवश्यकता थी और यह सही वक्त पर लोगों को उपलब्ध हुई थी।

प्रश्न (3) मॉरिशस गन्ने की खेती के लिए मशहूर रहा है। निश्चित ही आपके पिताश्री भी गन्ने के खेतों में काम करते रहे होंगे। वे बीते दिनों की तकलीफों के बारे में आपको सुनाते भी रहे होंगे कि किस तरह से उन्हें पराई धरती पर यातनाएं सहनी पड़ी थी?

उत्तर – मेरे किशोर काल में मेरे पिता मुझे इस देश में आकर बसे हुए भारतीयों की वेदनाजनित कहानियाँ सुनाया करते थे। अपने पिता से सुना हुआ भारतीयों का दुख – दर्द मेरी धमनियों में बहुत गहरे उतरता था। यह तो बाद की बात हुई कि मैं लेखक हुआ। परंतु कौन जाने मेरे पिता अप्रत्यक्ष रूप से मुझे लेखन कर्म के लिए तैयार करते थे। वे मेरे लिए अच्छी कलम खरीदते थे। पाठ्य, पुस्तक और पढ़ाई के दूसरे साधनों से मानो वे मुझे माला माल करते थे। मेरे पिता अनपढ़ थे, लेकिन उन्हें ज्ञात था सरस्वती नाम की एक देवी है जिस के हाथों में वीणा होती है और उसे विद्या की देवी कहा जाता है। मेरे पिता ने सरस्वती का कैलेंडर दीवार पर टांग कर मुझ से कहा था विद्या प्राप्ति के लिए नित्य उस का वंदन करूँ। वह एक साल के लिए कैलेंडर था, लेकिन उसे मूर्ति मान कर हटाया नहीं जाता था। वर्षों बाद हमारा नया घर बनने के बाद ही किसी और रूप में मेरे जीवन में सरस्वती की स्थापना हुई थी।

प्रश्न (4) निश्चित ही उनकी उस भयावह स्थिति की कल्पना मात्र से आप भी विचलित हुए होंगे और एक साहित्यकार होने के नाते आपने उस पीड़ा को अपनी कलम के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश की है?

उत्तर – मैंने बहुत–सी विधाओं में लेखन किया है और अपने देश से ले कर अंतरसीमाओं तक मेरी दृष्टि जाती रही है। यहाँ मेरे पूर्वजों के विस्थापन का संदर्भ अपने तमाम प्रश्नों के साथ मेरे साथ जुड़ जाने से मैं अपने उसी लेखन की यहाँ बात करूँगा जो विस्थापन से संबंध रखता है।

मैंने 'इतिहास का दर्द' शीर्षक से एक नाटक (1976), लिखा था जो पूरे देश में साल तक विभिन्न जगहों में मंचित होता रहा था। यह पूर्णत: भारतीयों के विस्थापन पर आधारित था। मेरे लिखे शब्दों को पात्र मंच पर जब बोलते थे मुझे लगता था ये प्रत्यक्षत: वे ही भारतीय विस्थापित लोग हैं जो मॉरिशस आए हैं और आपस में सुख–दुख की बातें करने के साथ इस सोच से गुजर रहे हैं कि मॉरिशस में अपने पाँव जमाने के लिए कौन से उपायों से अपने को आजमाना जरूरी होगा।

अपने लेखन के लिए मैंने भारतीयों का विस्थापन लिया तो यह अपने आप सिद्ध हो जाता है मैंने उनके सुख–दुख, आँसू, शोषण, गरीबी, रिश्ते सब के सब लिये। मैंने लिखा भी है मैं आप लोगों के नाम लेने के साथ आप की आत्मा भी ले रहा हूँ। मैं आप को शब्दों का अर्घ्य समर्पित करना चाहता हूँ अत: मेरा सहयोगी बन जाइए। उन से इतना लेने में हुआ यह कि मैं भी वही हो गया जो वे लोग होते थे। किसी को आश्चर्य होना नहीं चाहिए अपने देश के इतिहास पर आधारित अपना छ: खंडीय उपन्यास 'पथरीला सोना' लिखने के लिए जब मैं चिंतन प्रक्रिया से गुजर रहा था तब मैं उन नष्टप्राय भित्तियों के पास जा कर बैठता था जिन भित्तियों के कंधों पर भारतीयों के फूस से निर्मित मकान तने होते थे। जैसा कि मैंने ऊपर में कहा ये मकान उनके अपने न हो कर फ्रांसीसी गोरों के होते थे। उन मकानों में वे बंधुआ होते थे। मैंने उन लोगों से बंधुआ जैसे जीवन से ही तारतम्य स्थापित किया और लिखा तो मानो उन्हीं की छाँव में बैठ कर। बात यह भी थी कि भारतीयों के उन मकानों या भित्तियाँ का मुझे चाहे एक का ही प्रत्यक्षता से दर्शन हुआ हो। अपनी संवेदना और

कल्पना से मैंने उसे बहुत विस्तार दिया है। तभी तो मुझे कहने का हौसला हो पाता है कि मैंने उसे भावना के स्तर पर जिया है। पर्वत की तराइयों के पास जाने पर मुझे एक आम का पेड़ दिख जाए तो मेरी कल्पना में उतर आता है मेरे पूर्वजों ने अपने संगी साथियों के साथ मिल कर इसे रोपा था। मेरे देश में तमाम नदियाँ बहती हैं जिन्हें मैंने मिला कर मनुआ नदी नाम दिया है। इसी तरह पर्वत यहाँ अनेक होने से मैंने बिंदा पर्वत नाम रख लिया और आज मुझे सभी पर्वत बिंदा पर्वत लगते हैं। मैंने सुना है दुखों से परेशान विस्थापित भारतीयों की त्रासदी ऐसी भी रही थी कि पर्वत के पार भागते वक्त उन के पीछे कुत्ते दौड़ाये जाते थे। कुआँ खोदने के लिए भेजे जाने पर ऊपर से पत्थर लुढ़का कर यहाँ जान तक ली गई हैं। बच्चे खेल रहे हों और कोई गोरा अपनी घोड़ा बग्गी में जा रहा हो तो आफत आ जाती थी। यह न पूछा जाता था स्कूल क्यों नहीं जाता। कहा जाता था बड़े हो गए हो तो खेतों में नौकरी करने क्यों नहीं आते हो। पर ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में यह लिखित मिलने की कोई आशा न करे, क्योंकि लिखने की कलम उन दिनों केवल फ्रांसीसी गोरों की होती थी।

प्रश्न (5) भारत छोड़ने से पहले लोग अपने साथ धार्मिक ग्रंथों को भी ले गए थे। कठिनश्रम करने के बाद वे इन ग्रंथों का पाठ करते और अपने दुखों को कम करने का प्रयास करते थे। इस तरह वे अपनी परम्परा और संस्कार को बचा पाए। यह वह समय था जब क्रिस्चियन मिशनरी अपने धर्म को फैलाने के लिए प्रयासरत थे। निश्चित ही वे इन पर दबाव जरुर बनाते रहे होंगे कि भारतीयता छोड़कर ईसाई बन जाओ।

उत्तर – भारतीय मजदूरों के मॉरिशस आगमन के उन दिनों में यहाँ विशेष रूप से धर्म, संस्कृति, आचरण, पूजा, रामायणगान, संस्कार, नीति जैसे बहुमूल्य सिद्धांतों पर विशेष रूप से बल दिया जाता था। उन दिनों की स्थिति को देखते हुए ऐसा होना हर कोण से आवश्यक था। ऐसा न होता तो मॉरिशस का भारतीय मन डगमगा गया होता और तब अनर्थ की काली स्याही सब के चेहरे पर पुत जाती। इस देश के उस क्रूर इतिहास को आज भी याद रखा जाता है। ईसाईयत के प्रचार के लिए ईसाई वर्ग के लोग भारतीय वंशजों के घर पहुँचते थे और लंबे समय तक द्वार पर खड़े हो कर उन के दिमाग में डालने की कोशिश करते थे आप इतनी आज्ञा तो दें ताकि हम आप के घर में ईसाईयत का पौधा बो कर ही लौटेंगे। आप हमारे लिए इतना करें हमारे दिये हुए मंत्रों से उस पौधे का सींचन करते रहें। फिर एक दिन ऐसा आएगा जब ईसाईयत का वह पौधा बढ़ कर छतनार हो जाएगा तब बड़ी सुविधा के साथ आप के बच्चे उसकी छाया में पनाह पाना अपने लिए सौभाग्य मानेंगे। ईसाईयत की उस लहर ने यदि अपनी चाह के अनुरूप हमारे घरों में प्रवेश पा ही लिया होता तो बहुत पहले मॉरिशस में भारतीयता की छवि धूमिल हो गई होती। सौभाग्य कहें कि भारतीय संस्कार लोगों के सिर पर चढ़ कर बोलता था तभी तो लोग बाहरी झाँसे में भ्रमित होने की अपेक्षा अपने संस्कार में और गहरी श्रद्धा से आबद्ध होते जाते थे। निस्सन्देह धार्मिक संस्थाओं ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया था। प्रसंगवश यहाँ मुझे कहना पड़ रहा है कि आज की तरह विच्छृंखल संस्थाएँ न हो कर उस जमाने की संस्थाएँ अपने लोगों के प्रति समर्पित और भाव प्रवण हुआ करती थीं। सेवा करो और बदले में फल की कामना मत करो। ईश्वर को इस बात के लिए आज हम धन्यवाद तो दें अपनी ही फूट और ईर्ष्या जैसे अनाचार के बावजूद हमारी सांस्कृतिक विरासत निश्चित ही व्यापक अडिग और सर्वमान्य चली आ रही है। विशेष कर धार्मिक कृतियाँ पूजा–पाठ और धार्मिक वंदन की

गरिमा को उच्चतर बनाने में अपना सहयोग ज्ञापित करने में कोई कमी नहीं छोड़तीं।

प्रश्न (6) उन दिनों वहां की सरकार जनता पर निर्ममता से अत्याचार करती रहती थी. निश्चित ही आपका परिवार इस भीषण यातना का शिकार हुआ होगा। इस अत्याचार को परिवार ने कैसे झेला और आप पर इसका कितना असर हुआ। आपकी पढ़ाई–लिखाई पर कितना असर पड़ा?

उत्तर – जमीन फ्रांसीसी गोरों की होती थी जो लोगों को पटे पर ईख बोने के लिए दी जाती थी। मेरे पिता के भी खेत हुए। गोरों ने जब देखा कि भारतीय मन के लोग उन के बंधनों से मुक्त होने के लिए प्रयास कर रहे हैं तो उन्होंने देश व्यापी अपना अभियान चला कर एक साल के भीतर लोगों के सारे खेत छीन लिये थे। मेरे पिता खेत छीने जाने के दुख के कारण मानो निष्प्राण हो गए थे। दोनों बैलगाड़ियाँ बिक गईं। गौशाला में दो गाएँ थीं तो माँ ने किसी तरह दिल पर पत्थर रख कर एक गाय बेची और एक गाय को अपने बच्चों के दूध के लिए बचा लिया। पथरीला सोना उपन्यास में मैंने लालबिहारी और इनायत नाम के दो पात्रों के माधयम से इस घटना का मर्मभेदी वर्णन किया है। मेरे पिता के सिर पर कर्ज था। घर के सभी लोगों को मिल कर किसी तरह कर्ज से उबरना था। परिवार की शाखें बढ़ते जाने से आवश्यक था मकान बड़ा हो। ऐसा नहीं कि यह सब लोगों हो जो हम को लील जाए। हिम्मत से इन सारी कठिनाइयों पर जय की जा सकती थी और हम जय कर भी रहे थे। बस हमारी गरीबी की चादर बहुत दूर तक फैल गई थी। योजना से काम लेना पड़ता था ताकि अपने लक्ष्य पर पहुँच कर तसल्ली कर पाएँ कि हम ने कुछ तो किया। मुझसे बड़े मेरे दो भाई थे। मुझसे छोटी एक बहन और एक भाई। दोनों बड़े भाई खेत के कामों में पिता का हाथ बँटाते थे। गरीबी और अस्त व्यस्तता की उस दयनीय रौ में मेरी पढ़ाई छूट सकती थी। पता नहीं मेरे परिवार में वातावरण कैसे इस तरह बन आया था कि केवल मैं पढ़ाई में आगे निकलता जाऊँ और मेरे भाई बहन मानो कुछ – कुछ पढ़ाई से अपनी उम्र की सीढ़ियाँ चढ़ते जाएँ। पर आने वाले दिनों में मेरी पढ़ाई गंभीर रूप से बाधित हुई। मेरी पढ़ाई व्यवस्थित रूप से न हो सकी तो इस का कारण घर का बँटवारा था। दोनों बड़े भाइयों की शादी होने पर वे अपने कुनबे की चिंता करने लगे थे। उन के अलग होने पर हम माता – पिता और तीन बच्चे साथ जीने के लिए छूट गए। यहाँ भी वही हुआ हमें जीना था तो हम जी लिये। यहीं मुझे मजदूरी करने के लिए कुदाल थामनी पड़ी जो वर्षों छूटी नहीं। इस बीच पिता बीमार हुए तो स्वस्थ हो पाना उनके लिए स्वप्न बन गया.

प्रश्न (7) मेरा अपना मानना है कि किसी भी भाषा को यदि बचपन से सीखा जाए तो वह जल्दी ही आत्मसात हो जाती है। जब आपने हिन्दी सीखना शुरु किया तब तक तो आपकी उम्र लगभग 20–21 वर्ष की हो चुकी होगी। इस बढ़ी उम्र में आपको निश्चित ही दिक्कतें भी खूब आयी होंगी?

उत्तर – बचपन में मुझे अपने पिता की ओर से हिन्दी का संस्कार मिला था। जिसे वास्तविक हिन्दी का ज्ञान कहेंगे वह बाद में मेरे हिस्से आया। मैं आत्म गौरव से कहता रहा हूँ हमारे देश में हिन्दी के उत्थान के लिए काम करने वाली हिन्दी प्रचारिणी सभा के सौजन्य से मैं व्याकरण सम्मत हिन्दी सीख पाया था। हम तीस तक विद्यार्थी एक कक्षा में पढ़ते थे। जिनमें से दो तिहाई विवाहित थे। स्वयं मेरे दो बच्चे थे। एक महिला की तो दो बेटियों की शादी भी हो गई थी। मेरी निजी बात यह है कि मेरी गरीबी के बादल मेरे सिर पर तने हुए थे परिणाम स्वरूप बस का भाड़ा

चुका कर जाने में मुझे तंगहाली से गुजरना पड़ता था। पढ़ाई का लक्ष्य यही था कि हिन्दी सीख लूँ ताकि हिन्दी अधयापक बनने का मेरा रास्ता सहज हो सके। वैसे, मैंने इस बीच पुलिस बनने के लिए हाथ – पाँव मारने की कोशिश की थी। यदि पुलिस की नौकरी मुझे पहले मिल जाती तो मैं इधर का आदमी न हो कर उधार का होता। मैंने चोरों की गिरेबान पर हाथ खूब रखा होता और उसी अनुपात से अपना ईमान रिश्वत को प्रतिदान में दे कर सोचता था कि मैं तो उसी धारा में बह रहा हूँ जिस धारा का सभी भक्ति–वंदन कर रहे हैं। मेरे बिना हिन्दी अनाथ तो न होती। लेकिन मैं स्वयं के साक्ष्य में कह रहा हूँ मेरे नाम से हिन्दी की इतनी कृतियाँ नहीं होतीं। मैं हिन्दी का पर्याय न होता और हिन्दी की दुनिया मुझे जानती तक नहीं। आज हिन्दी से अपनी पहचान का मुझे बहुत फक्र है। हिन्दी मेरे प्रति इतनी उदार हुई कि उसने मुझे अनाथ नहीं छोड़ा। हिन्दी ने मुझे रोटी दी और मैंने इसी भाषा के बूते अपने बच्चों को पढ़ाया।

प्रश्न (8) मारीशस में आम बोलचाल की भाषा कृओल है जबकि सरकारी भाषा अंग्रेजी है। इन दो भाषाओं के बीच हिन्दी अपना स्थान कैसे बना पायी? क्या कोई ऐसी संस्था उस वक्त काम कर रहीं थी, जो हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए कटिबद्ध थी?

उत्तर – भारतीयों के आरंभिक दिनों में तो निश्चित ही बहुत अंधेरा था। कालांतर में हिन्दी का गवाक्ष खुला और वह अपनी मंजिल की तलाश के लिए व्याकुल हो उठी। जैसे–तैसे हिन्दी परवान चढ़ती गई और उस ने देश व्यापी बन कर जन–जन के मन में यह भाव जगाया कि मैं इस देश में समर्थ भाषा के रूप में पहचान बनाना चाहती हूँ। जैसे लिखा मैं इस देश में समर्थ भाषा के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहती हूँ। हिन्दी ने नाम तो पाया, लेकिन दुख तो मानेंगे उसे आज भी वह शिखर न मिल पा रहा है। जिस की अपेक्षा में उस ने हिन्दी के दावेदारों का दरवाजा खटखटाया था। अब इतना ही कहा जा सकता है हिन्दी को कुछ तो सुलभ हो सका और इस हिन्दी में लिखने वाले उसे अपनी रचनाओं का अर्घ्य समर्पित कर सके। फिलहाल इसी पर हमें संतोष करना पड़ता है। दो संस्थाओं का जिक्र करना यहाँ मैं आवश्यक मान रहा हूँ। वे दोनों संस्थाएँ हैं मॉरिशस आर्य सभा और हिन्दी प्रचारिणी सभा। आर्य सभा ने 'धर्म को बचाओ' और 'हिन्दी को विस्तार दो' जैसी भावनाओं से एक शती का सफर अब तक इस देश में पूरा कर लिया है। हिन्दी प्रचारिणी सभा ने विशेष रूप से व्याकरण सम्मत हिन्दी पर जोर दिया और इसी पर टिक कर उस ने मॉरिशस को सिखाया कैसे शुद्ध हिन्दी को थामा जा सकता है। यहीं से हम सब को प्रेमचंद, प्रसाद, निराला महादेवी वर्मा आदि हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों को जानने और पढ़ने का अवसर मिला।

प्रश्न (9) लघुकथाओं से लेकर कहानी, लेख–आलेख तथा उपन्यास तक आपका सारा लेखन हिन्दी में हुआ है। हिन्दी लेखन से आपका जुड़ाव कब और कैसे हुआ ?

उत्तर – यह तो तय है जिस ने भी इस देश में हिन्दी के लेखक के रूप में अपनी पहचान बनाने की कोशिश की उसके लिए भारत के हिन्दी के रचनाकार अपने आदर्श रहे हैं। जरूरी नहीं सब एक ही लेखक का नाम लें। अभिमन्यु अनंत और मैंने महात्मा गांधी संस्थान में पचीस साल तक एक साथ काम किया। हमारा एक और मित्र था जिसका नाम पूजानन्द नेमा था। वह गजब का कवि और चिंतक था। रोज हम तीनों घंटों साहित्यिक चर्चा करते थे। अभिमन्यु एक ही भारतीय लेखक से अपने को प्रभावित बताते थे वे थे शरतचंद चट्टोपाध्याय। मैंने प्रेमचंद को अधिकाधिक

पसंद किया। पूजानन्द नेमा के लिए निराला आदर्श कवि थे। मॉरिशस के प्राथमिक कवियों में ब्रजेन्द्र कुमार भगत हुए जिन्हें हमारे देश के स्थापित कवि के रूप स्वीकारा जाता है। वे मैथिलीशरण गुप्त से प्रभावित थे। वे मैथिलीशरण गुप्त की ही तरह कविता रचने का प्रयास करते थे। इस तरह मॉरिशस में शुरुआती कवियों और कहानीकारों के अपने – अपने आदर्श होने से वे प्राय: उन्हीं की तरह लिखने की कोशिश करते रहे। लेकिन कालांतर में सोच और अभिव्यक्ति में सब को स्वयं की जमीन तो तलाशनी ही थी। अभिमन्यु अनंत ने मॉरिशस की मिट्टी का बेटा बन कर वही लिखा जिस में उस की अपनी मिट्टी की सुगंध हो। इसी तरह पूजानन्द नेमा, सूर्यदेव सिबरत, सोमदत्त बखोरी, दीपचंद बिहारी, भानुमती नागदान और स्वयं मैं हम सभी अपनी – अपनी रचनाओं में अपने – अपने नजरिये से अपने देश को आँकते रहे।

प्रश्न (10) अच्छी हिन्दी सीख लेने के बाद आपने भी अपनी ओर से हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास किया होगा? इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें?

उत्तर – मैंने प्रयास अवश्य बहुत किया है। मैं स्थानीय रेडियो में दस साल तक हर सप्ताह तीन साहित्यिक कार्यक्रम प्रस्तुत करता था। इस में एक रेडियो नाटक होता था। मैं एकांकी लिख कर कलाकारों के साथ रेडियो से प्रसारित करता था। मैं समझता हूँ हिन्दी को निखार देने में मेरा यह श्रम समुचित था। मैं 1972 – 1980 के वर्षों में हर शनिवार और रविवार की सुबह से दो बजे तक एक कालेज में एक कमरा ले कर वयस्कों को हिन्दी पढ़ाता था। मेरे विद्यार्थियों में पचास की उम्र तक के लोग होते थे और मैं पढ़ाने वाला चालीस के आस पास की उम्र में जीवन की साँसें लेता था। ये लोग हिन्दी सरकारी स्कूलों में शिक्षक थे। मेरा विज्ञापन इस रूप में हो गया था कि मैं व्याकरण पढ़ाने में मास्टर हुआ करता हूँ। यह सही था मैं शुद्ध हिन्दी पर बल देता था और मेरे साथ पढ़ने वालों को लगता था मेरे साथ पढ़ें तो हिन्दी ठीक से जान लेंगे। मैं व्याकरण के लिए काली श्यामपट को उजली खड़ी से रंग कर मिटाया करता था। लगे हाथ मेरा ध्यान इस बात पर रहता था इन लोगों को परीक्षा में फ़ल करवाना है। जयशंकर की कविता पढ़ाना चाहे मेरे लिए दुरुह होता था, लेकिन तैयारी करने पर निश्चित ही वह मेरे लिए सहज हो जाता था। एक बात मेरे लिए बहुत ही अच्छी होती थी मैं स्वयं सीखता भी था। छंद पढ़ाएँ तो मात्र की समझ से संपृक्त कैसे न होंगे। मैं एक उद्देश्य से अपने उस अतीत की चर्चा कर रहा हूँ। मेरा विशेष तात्पर्य यह है मैं अपने वयस्क विद्यार्थियों में लिखने का भाव अंकुरित करने का प्रयास करता था। हर महीने के अंतिम सप्ताह को मैं आधा दिन लेखन को समर्पित करता था। मेरे विद्यार्थियों में से बहुतों ने बाद में कुछ न कुछ लिखा। मैं महात्मा गांधी संस्थान में प्रकाशन विभाग से जब से जुड़ा लेखक – कवि तैयार करने में मेरा ध्यान बराबर लगा रहता था। किसी किसी की तो आधी कहानी को मैंने लिख कर पूरा किया और बिना अपना जिक्र किये उन्हीं के नाम से छापा। लोग कविता ले कर मेरे घर आते थे। मैं संशोधन करने के साथ यह कहते उन का मनोबल बढ़ाता था। अच्छी कविता की तुम में पूरी संभावना है। मैंने भारत में प्रकाशकों से बात कर के दो चार लोगों की पुस्तकें भी छपवायी हैं। अब साहित्यकार के रूप में मेरी पहचान बनते जाने से लोग मेरे साथ जुड़ने के लिए और भी तत्पर रहते हैं। बल्कि मैं भी उन की और दृष्टि उठाये रखता हूँ। हम सब की कामना एक ही होती है हमारे देश में हिन्दी का अपना एक दमदार साहित्य हो।

प्रश्न (11) हिन्दी के प्रचार-प्रसार करने के लिए आपको यात्राएं भी करनी होती होगी, आने-जाने का खर्च भी आपको उठाना पड़ता होगा। यह सब आप कैसे कर पाते थे। क्या विधयार्थियो से कोई शुल्क वसूल करते थे?

उत्तर - मैं रेडियो में प्रोग्राम करता था तो मुझे पैसा मिलता था। बाकी मैंने निशुल्क ही पढ़ाया है। साल के अंत में हम विदाई का समारोह आयोजित करते थे। हम सभी पैसे लगा कर पेय और मिठाई खरीदते थे। उस अवसर पर विद्यार्थी उपहारों से मुझे लाद देते थे। एक महिला पढ़ने आती थी। वे लोग प्याज की खेती करते थे। अपने पति के साथ वह अकसर प्याज ले कर मेरे घर पहुँचती थी। हिन्दी और हिन्दी लेखन का ऐसा भी संसार मैंने बनाया था। विद्यार्थी तो हर साल बदलते रहते थे, लेकिन पुराने लोगों से मेरा नाता बना रहता था। इस तरह से दो सौ तक लोगों को मैंने हिन्दी की गरिमा के लिए तैयार कर लिया था।

रही यह बात कि विदेश गमन के लिए मेरा खर्च कैसे पूरा होता है। बड़ी विनम्रता के साथ कहना चाहूँगा हिन्दी ने अनेकों बार स्वयं मेरा खर्च वहन किया है। 1970 में मैं पहली बार विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर भारत गया था। मेरी कहानियाँ धर्मयुगा आजकल सारिका आदि में प्रकाशित होती थीं। इसी के बल पर मुझे नागपुर के लिए सरकार की ओर से हवाई टिकट मिला था। सूरीनाम जाना हुआ तो इस का खर्च भी भारत सरकार ने पूरा किया। साहित्य आकादेमी, नेहरू संग्रहालय तथा इस तरह से और भी अनेक जगहों से मुझे टिकट मिलते रहे हैं। पर साथ ही मैंने अपना भी खर्च किया है।

प्रश्न (12) उन दिनों आपकी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी। हिन्दी सीखने वालों के मन में हिन्दी के प्रति ललक जगाने के लिए आप पत्रिकाओं का जिक्र भी जरुर करते रहे होंगे?

उत्तर - बेशक, मैं बहुत जिक्र करता था। ईश्वर की कृपा से रुचि जगाने का कौशल मुझे आता था। मेरा प्रभाव अपने विद्यार्थियों पर इसलिए तो निश्चित ही पड़ता था क्योंकि मैं साहित्य जगत में जाना जाता था। धर्मयुग, सारिका, आजकल जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओं में मेरी कहानियाँ छपने पर मैं अपने विद्यार्थियों को प्रति दिखा कर कहता था मेरी कहानी छपी। मैं प्रकाशित कहानी किसी विद्यार्थी से पढ़वा कर मंच को खुला छोड़ता था कि जिसे उस कहानी पर कुछ बोलना हो खुल कर बोले। मैं उन दिनों की अपनी एक खास उपलब्धि यह भी मानता हूँ कि मैंने लिखने की चाह पैदा करने में ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं मानी थी। मैंने विद्यार्थियों से कहा था चलें एक पत्रिका का प्रकाशन शुरु करते हैं। लिखने वाले तुम लोग तो होगें ही। देश के रचनाकारों से भी रचना मांग कर पत्रिका में चार चांद लगाएँगे। पत्रिका प्रकाशित करने के लिए पैसा लगता और मेरे विद्यार्थी पैसा लगाने के लिए तैयार थे। मैंने पत्रिका का नाम रखा था -निर्माण। पर दुर्भाग्य इस का एक ही अंक निकल पाया था। एक तो अगले साल विद्यार्थी बदल गए। रही मेरी बात, अब वक्त कम पड़ते जाने से मैं पढाने से विमुख हो जाना चाहता था।

प्रश्न (13) कहानीकार होने के साथ ही आपका नाट्य लेखन भी निरन्तर जारी था. निश्चित ही आपके नाटक के किरदार आपके विद्यार्थी ही रहे होंगे। क्या आपने भी कभी इसमे

अपनी अहम भूमिका का निर्वहन किया होगा?

उत्तर – सच कहूँ तो अब वह जमाना एक सपना लगता है। मैं अपने विद्यार्थियों के साथ मिल कर नाटक तैयार करता था। नाटक मेरे लिखे होते थे और कलाकार मेरे विद्यार्थी होते थे। रेडियो और टी. वी. पर हमारे नाटक उन दिनों खूब आते थे। राष्ट्रीय स्तर पर मंत्रलय की ओर से नाटक प्रतियोगिता का आयोजन होता था जिस में हमारे नाटक अकसर ग्राइनिल के लिए चुने जाते थे। नाटक लेखक के रूप में मुझे पुरस्कार मिलते थे और मेरे कलाकार भी पुरस्कृत होते थे। मेरी चर्चा तो भारतीय पत्रिका धर्मयुग तक में हुई थी। नाटक की मुख्य धारा में होने से ही 'मुझे अंधा' युग नाटक से जुड़ने का अवसर मिला था। जैसा कि मैं कहता हूँ श्रद्देय धर्मवीर भारती का नाटक अंधा युग होने से और उन की धर्मयुग पत्रिका में मेरी कहानियाँ छपने से मेरे द्वार खुलते गए थे। प्रथम विश्व सम्मेलन नागपुर में हमारी ओर से यह नाटक मंचित हुआ था। निर्देशक भारतीय रंगकर्मी मोहन महर्षि थे और मैं सह निर्देशक था। पर मैंने किसी नाटक में कलाकार की हैसियत से कभी भाग नहीं लिया। यह मेरी रुचि का हिस्सा बनता नहीं था।

प्रश्न (14) हिन्दी से संबंधित आप के जीवन में कोई विस्मयकारी घटना घटी होगी?

उत्तर – आप ने इस प्रश्न से मेरी रगों को बहुत गहरे छुआ। मैं 1970 में जब सरकारी अध्यापक बनने के लिए इन्टरव्यू देने गया था तो यहाँ मेरे साथ एक बहुत ही विस्मयकारी घटना घटी थी। पूरे मॉरिशस से सरकारी स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने के लिए पूरे साल में तीस तक लोगों को लिया जाता था। इस में बड़े – बड़े प्रमाण पत्र वाले होते थे। मेरे पास केवल उतने ही प्रमाण पत्र थे जिन के बल पर मैंने आवेदन की खानापूर्ति की थी। मुझे जब भीतर बुलाया गया था तो प्रोफेसर रामप्रकाश ने मेरा नाम पूछा था। वे भारतीय थे। यहाँ के शिक्षा मंत्रलय के बुलाने पर वे प्रशिक्षण देने आए थे। उन के पूछने पर मैंने नाम तो कहा था और लगे हाथ मेरी नजर 'अनुराग' पत्रिका पर चली गई थी जो चार – पाँच दिन पहले प्रकाशित हुई थी। उस में मेरी लिखी पहली कहानी 'प्रतिज्ञा' प्रकाशित हुई थी। इन्टरव्यू के लिए प्रश्नकर्ता तीन सज्जन थे। एक मंत्रलय का प्रतिनिधिा था, एक अंग्रेजी – फेंच में पूछता और प्रोफेसर रामप्रकाश हिन्दी में। मैंने हिम्मत की थी और सीधो प्रोफेसर रामप्रकाश से कहा था इस पत्रिका में मेरी एक कहानी छपी है। वे खुश हो गए थे। उन्होंने खोल कर कहानी देखने पर मुझे बधाई दी थी। आश्चर्य, इतने में ही मेरा इन्टरव्यू पूरा हो गया था और दो दिन बाद मेरी भर्ती के लिए टेलिग्राम मेरे घर पहुँच गया था।

प्रश्न (15) मॉरिशस में हिन्दी की क्या स्थिति है– ?

उत्तर – आज मॉरिशस में हिन्दी का तो बहुत ही व्यापकता से बोलबाला हो चला है। सर्वत्र हिन्दी की पढ़ाई का शोर मचा हुआ है। परंतु हिन्दी में लेखन की बात होने से हमें दिल पर हाथ रख कर सोचना पड़ जाता है एक यही कोना क्यों सूना – सूना प्रतीत होता है। इस पर मैं अधिक बोलने से अपने को बचा लेना यथेष्ट मान रहा हूँ क्योंकि एक यही मैदान होता है जहाँ अनदेखी तलवार की झनझनाहट बहुत होती है। परंतु हाँ, मैं आज की युवा पीढ़ी पर बहुत भरोसा करता हूँ। आज नौकरी से रिटायर हो जाने के बाद मुझे बाहरी हवा का कुछ खास ज्ञान नहीं रहता। पर साहित्यिक गोष्ठियों में इन लोगो से मुलाकात हो जाया करती है। मुझे लगता है कक्षागत पढ़ाई में

ही ये लोग आ कर ठहर जाते हैं। लिखने वाले दो तीन ही दिखते हैं और इस के आगे अंधेरे का आभास होता रहता है। किसी से उस का प्रिय लेखक पूछ लें तो शायद उस के पास जवाब न हो। तो इस तरह से छोटी – छोटी बातें हैं जो चट्टान जैसे भारीपन से हमारे सिर पर लदे होते हैं। ऐसा नहीं कि इस का निराकरण हो नहीं सकता। निराकरण कोई त्याग तपस्या नहीं मांगता। वह लगन और निष्ठा मांगता है। अब तो मॉरिशस में पढ़ाई पूरी करने में पूरी सुविधा होती है। सरकार ने अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी के पठन पाठन के लिए निशुल्कता का प्रावधान कर रखा है। आओ और हिन्दी ले जाओ। ऐसे में मुझे नहीं लगता हिन्दी में लेखन का कोई अमावस चलना चाहिए।

प्रश्न (16) उम्र के सत्तरवें पड़ाव में आने से पहले तक आपका एक कहानी संग्रह विष मंथन, दो लघुकथा संग्रह- चेहरे मेरे-तुम्हारे, यात्र साथ-साथ (प्रत्येक में लगभग 300 लघुकथाएं हैं.), छः उपन्यास-छोटी मछली बड़ी मछली, चेहरों का आदमी, पूछें इस माटी से, बनते बिगड़ते रिश्ते, सहमें हुए सच और अभी हाल ही में प्रकाशित उपन्यास पथरीला सोना (छः खण्डों में, जिसमे हर एक खण्ड 400-500 पेज के हैं।) और सौ से अधिक कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। इस सीमा पर पहुंचकर और आगे क्या करने का मानस बना है आपका?

उत्तर – अब केवल लिखना मेरा काम होता है और अपने इस काम से मुझे बहुत प्रेम है। इनदिनों मैं एक उपन्यास पर काम कर रहा हूँ। इस के बाद मेरा विचार केवल कहानियाँ लिखने का है। मेरी प्रतिनिधि कहानियों का एक संग्रह इसी महीने प्रकाशित हुआ है।

प्रश्न (17) आपकी निरन्तरता, सक्रियता और श्रम-साध्य लेखनी के चलते आपको अनेकानेक संस्थाओं ने सम्मानित किया है। आप अपने सम्मानों का एक ब्योरा देते तो बहुत ठीक होता।

उत्तर – 2003 में सूरीनाम में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में मुझे विश्व हिन्दी सम्मान से विभूषित किया गया था। लेखन में बराबर निष्ठा बनाये रखने से तब से सम्मानित होता आया हूँ। 2017 में मेरे दो सम्मान विशेष रुप में चर्चा में आए। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से मुझे विश्व हिन्दी प्रसार सम्मान मिला और इस के साथ मुझे एक लाख रूपए प्राप्त हुए थे। कुछ महीनों बाद मुझे देवरिया बुला कर विश्व नागरी रत्न सम्मान प्रदान किया गया। सम्मानों की इस कड़ी में अब मेरे साथ एक और महत्पूर्ण अध्याय जुड़ गया है। मुझे श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको सम्मान, जिस में ग्यारह लाख रूपए जुड़े हुए थे, प्राप्त होना मुझे इस सोच में ले जाता है हिन्दी के रास्ते चलते मैंने अपनी जेब की पूँजी गँवायी हो तो वह मुझे वापस मिल गई है। मुझे हिन्दी का भोला बालक मान कर किसी ने ठगी से मेरा पैसा मारा हो वह मुझे वापस वसूल हो गया है। पर इस राशि का मतलब मेरे लिए इतना ही नहीं है। मेरा देश याद रखेगा हिन्दी के लेखक रामदेव धुरंधर का महत्व विश्व हिन्दी में आँका गया था। इतनी बड़ी राशि के अक्स में मेरी परछाईं की कल्पना करने वाले लोग जरूर कहेंगे मैंने अपने को तपाया था और नष्ट न हो कर कुंदन बने बाहर निकला था।

गोवर्धन यादव, 103, कावेरी नगर, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) 480001
मो0 : 09424356400, E-mail : goverdhanyadav44@gmail.com

शिव प्रसाद सिंह की कहानियों की आंचलिकता

जयवर्धन 'शिशिर'

उन्होंने प्रायः परिवार के भीतर पैठकर अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का विश्लेषण किया है।'" आर- पार की माला' 'मुर्दा सराय', 'इन्हे भी इन्तजार है', आदि उनके कहानी संग्रह में इस प्रवृति विशेष का हम अवलोकन कर सकते हैं।

आंचलिकता एक विशेष दृष्टि है जिसका गाँव, अंचल अथवा क्षेत्र विशेष के प्रतिपाद्य से मूलतः जुड़ाव समग्रतः रहता है। इसकी सिद्धि के लिए स्थानीय दृष्यों, प्रकृति, जलवायु त्योहार, लोकगीत आदि भाषा और उच्चारण की विकृतियों के साथ अपेक्षित होता है। क्षेत्र विशेष के निवासियों के स्वभावगत और व्यवहारगत विशेषताएँ, उनका रोमांस, नैतिक मन्यताएँ आदि का समावेश बड़ी सर्तकता और सावधानी से किया जाना इसके शिल्प के अन्तर्गत आता है। आंचलिक रचना भले ही सीमित क्षेत्र से संबद्ध हो, पर प्रभाव की दृष्टि से वह सार्वजनीन हो सकती है, वशर्ते उसका स्रष्टा वैसी प्राणवला व अतल स्पर्शी सूक्ष्म दृष्टि रखता हो तथा उसके विचारों में गरिमा और कला में सौष्ठव हो। जिस (डॉ0 महेन्द्र भटनागर) । स्पष्ट है कि आंचलिक संदर्भों के उल्लेख से साहित्य और भाषा दोनो समृद्ध हुए हैं। इस दृष्टि से शिवप्रसाद सिंह की सम्पूर्ण कथात्मकता अपने उत्कर्ष को प्राप्त हुई है। सामाजिक और वैयक्तिक जीवन का नवीन यथार्थ आंचलिकता का दामन पकड़कर एक भिन्न शिल्प को जन्म दे गयी है।

शिव प्रसाद सिंह ग्राम्य जीवन की वास्तविकता और अन्तर्विरोधों के भीतर व्यक्तिमन की छटपटाहट को अपने ढंग से देखने वाले कथाकार हैं। उन्होंने शिल्प की

उपेक्षा नहीं की है, किंतु शिल्प को ही कहानी का सब कुछ नहीं मान लिया है। वस्तुज्ञान को रूपगत पहचान देने में वे सिद्धहस्त रहे हैं। रेणु, नागार्जुन और मार्कण्डेय आंचलिक कथा के सुविख्यात हस्ताक्षर माने गये हैं। यदि इस पंक्ति को और सुदीर्ध किया जाए तो उसमें शिव प्रसाद सिंह स्वयं ही जुड़ जायेंगे। ग्राम्य जीवन के अनुभव जनित संबंधो को अधिक प्रमाणिक और अकृत्रिम भाषा में व्यक्त करने में उनकी कहानियाँ समर्थ रहीं हैं। जहाँ रेणु की कहानियाँ अपनी लालित्य योजना के लिए उद्धृत की जाती है वहीं शिव प्रसाद सिंह की कहानियाँ ग्राम जीवन की तमाम विरूपता, गरीबी और जहालत को समेटे हुए हैं।

तीसरी कसम, रस प्रिया, लालपान की बेगम आदि रेणु की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानियों को ठुमरीधर्म माना गया है क्योंकि इनका अन्तर्माग एक ही है। रेणु की कहानियों की आंचलिकता विशिष्टता के साथ-साथ नए रोमांटिक उत्थान के अंग के रूप में भी देखा गया। कारण कि खेत से धान के भफरते फूलों की गंध और गौने की साड़ी से निकलती गंध आदि 'लालपान की बेगम' में धुल मिल गयी। रेणु और शिव प्रसाद सिंह के अतिरिक्त अनेक कथाकारों ने जिन अंचलों से कहानी की विषयवस्तु ली है, उनका प्रभाव उसके रूपायन पर पड़ता है। शिव प्रसाद सिंह की कहानियों में गाँव के लोगों का जो जीवन परिलक्षित हुआ वह जैनेन्द्र और अश्क आदि कथाकारो की परम्परा से भिन्न है। शिव प्रसाद सिंह की आरम्भिक कहानियाँ प्राय: अतीतोन्मुख है। दादा, दादी, भाई आदि के माध्यम से उन्होने जिन ध्वंसोन्मुख मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है, वे एक ओर जहाँ रोमांटिक है वहाँ पूर्वजों के मूल्यगत प्रतिमानो ने उन्हे मोहग्रस्त भी बना दिया है, पर यह यथार्थ उनका भोगा हुआ न होकर केवल देखा या सुना हुआ है। किंतु, जहाँ वे अतीतोन्मुख नहीं वहाँ उनकी कहानियाँ अधिक यथार्थपरक रहीं हैं।

उन्होंने प्राय: परिवार के भीतर पैठकर अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का विश्लेषण किया है।''[1] आर-पार की माला' 'मुर्दा सराय', 'इन्हे भी इन्तजार है', आदि उनके कहानी संग्रह में इस प्रवृति विशेष का हम अवलोकन कर सकते हैं।

शिव प्रसाद सिंह ऐसे अनूठे कथाकार है जिनकी कहानियों के फलक गाँव और कस्बाई जिन्दगी को अपनी समग्रता में समेटे हुए है। उन्होने अपने संग्रेह मेरी प्रिय कहानियाँ में स्पष्टत: उल्लेख किया है कि मेरी जिन्दगी में गाँव एक ऐसी हकीकत है जिसे मै चाहकर भी काट नहीं सकता । गाँव की अछोर हरियाली में डुबे सीमांत फसलो के रंग-बिरंगे गलीचे बिछाकर किसी अनागत की प्रतीक्षा में डूबी धरती, सरसो, जलकुंभी और भफरबेरी के जंगली फूलों से मदहोश वातावरण के बीच अपनी सामान्य जिन्दगी के लिए संघर्षरत किसान मेरी कहानियों के अविभाज्य अंग हैं।'' इस प्रकार उनकी कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की उपज तो अवश्य हैं। इनमें कतिपय रूमानी रूप- सज्जा भी दृष्टिगोचर होता है किन्तु इनके संकेतार्थ यथार्थ भाव भूमि से भी जुड़े हुए हैं। नन्हों कहानी की नायिका का यह कथन कितना संकेतार्थ से जुड़ा है-'' चबूतरे के पास कलसी

के नीचे पानी गिरने से जमीन नम हो गई थी। जौ के बीज गिरे थे जाने कब के इकट्ठे एक में सटे हुए उजले अंखुवे फूटे थे। नन्हों सहुआईन उन्हे देखती रही बड़ी देर तक ।[2]'' इन पंक्तियों में प्रेम की जैसी लाक्षणिक व्यथा भरी है वह कहानी को आंचलिक भर नहीं रहने देती[2]। 'एक यात्रा सतह के नीचे' की इन पंक्तियों में कहानीकार ने एक साथ आंचलिकता और रोमानियत का संदर्भगत निवर्हन किया है- ''गर्मियों में नीम के फूलों की मादक खुशबू कलेजे में अनजाना दर्द जगाती है तो जाड़ो में ढेंकी पर कूटे जाते हुए धान या चिउड़ा की सोंधी गन्ध भविष्य को भुजाओं में बांधकर आश्वस्त करती सी प्रतीत होती है और तब जाने क्यों उसे लगता है कि शोभा उसकी छाती में दुबक गयी है और उसके रूखे-सूखे बाल नागरमोथा के रेशे की तरह महकने लगे हैं।''[3]

'तीसरी कसम', रस प्रिया, लालपान की बेगम आदि रेणु की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानियों को ठुमरीधर्म माना गया है क्योंकि इनका अन्तर्मांग एक ही है। रेणु की कहानियों की आंचलिकता विशिष्टता के साथ-साथ नए रोमांटिक उत्थान के अंग के रूप में भी देखा गया। कारण कि खेत से धान के भफरते फूलों की गंध और गौने की साड़ी से निकलती गंध आदि 'लालपान की बेगम' में धुल मिल गयी। रेणु और शिव प्रसाद सिंह के अतिरिक्त अनेक कथाकारों ने जिन अंचलों से कहानी की विषय वस्तु ली है, उनका प्रभाव उसके रूपायन पर पड़ता है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का कलात्मक आयाम उसके भाव और शिल्प दोनों से जुड़े हुए हैं । वे जहाँ ग्रामीण परिवेश की उपज है वहीं सामाजिक जिन्दगी के दहकते चित्र उकेरने में भी सर्वतोभावेन समर्थ हैं। उनकी कहानियाँ फार्मूलाबद्ध नहीं, सामाजिक सरोकार से सर्वताभावेन जुड़ी हुई हैं।

अत: उनकी कहानियाँ सामाजिक जीवन का प्रदीप्त आईना है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- संपादक डा0 नगेन्द्र पृ0- 692
2. नन्हों कहानी से उद्धृत - एक यात्रा सतह के नीचे - पृ0- 21
3. एक यात्रा सतह के नीचे - संग्रह 2 में संकलित पृष्ठ-14

जयववर्धन 'शिशिर', मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत शोधार्थी

शंभु कांत सिन्हा एक वरिष्ठ पत्रकार है, सिन्हा जी एक प्रखर कवि भी हैं। कविता में प्रकृति, श्रृंगार, मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करने में इनकी विशेष अभिरूचि है। कविता में संवाद काविगण इनकी विशेषता है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनकी रचना प्रकाशित होती रहती है।

एकांत का शोर

एकांत का शोर
इधर, उधर हर ओर
व्यस्तता में संवाद छूटा
जैसे कोने में मैं बैठा रहता
भागते लोग, छूटते रिश्ते
एकांत का शोर

अभिव्यक्त कर पाता तो सही
मिलता ठौर सुकून को
अब तो जैसे बीत गए वर्षों
अकेले त्रसद मन कह उठता
किसका सुमिरन करते, किसे भूलते
और बुझते तुम्हे, खुद की भी बताते
समय का टुकड़ा हाथ तो लगे
फिर सब कुछ बांटते
मशीन नहीं, मानव बोध कराते
लेकिन अभी तो है
एकांत का शोर

दफ्तर की खटपट रोज–ब–रोज
यहां नया कुछ नहीं भाई
फाइलों को सरकाना है रोज
चाकरी है, बस खुद को बचाना
व्यस्तता का आलम ऐसा
रिश्ते पड़े मानो हिम पर्वत जैसे
एक अर्सा बीता खुद की कहे
ढेरों आसपास है, लेकिन मन के है फासले
एकांत का शोर

हर समाज में हूं, संवाद में हूं
पर इसका स्तर तो देखो
ये आदेशित, वो प्रयोजन मूलक
घर –बाहर की बातों में
शब्दों का जाल भर है
मानवीय संवेदनाएं ठिठक रही
मशीन बन चुका आदमी
एकांत का शोर

नदियों का नहाना किसी ने देखा है

शंभू कांत सिन्हा

नदियों का नहाना किसी ने देखा है
नहीं, क्योंकि डर लगता है
तेज आवाज करती, बहाती, काटती
अपना रास्ता स्वंय अख्तियार करती
वेग में सहज बहती जाती है
अब रवानगी ऐसी कि
इस मौसम में ही कभी देखा था
दूसरों का कब्जा भी बहा ले जाती
नदियों का नहाना किसी ने देखा है

इसकी वेगवती जल की बूंदे
सूख चुके मेरे भाव पर छींटे देती
तो जागा, फिर नदी से बातें करने लगा
यूं एक पहर, दो पहर भी निकला
अब रात्रि बेला में पड़ा अकेला
खुद से बातें कर रहा
चौतन्य हो गया अब मैं
महसूस कर रहा अंत करण में
नदियों का नहाना किसी ने देखा है

अब स्वसंवाद में सवाल करता
नदियों के नहाने जैसा मौका
तुम्हें कितनी बार मिलता
क्या, भाग्यवादी हो गए तुम
मौसम के मोहताज तो नहीं
फिर निर्मल क्यों नहीं हो लेते
बोझिल, थके से जी रहे हो
मंथर हो गई तुम्हारी गति
अरे, ये बोझ उतार फेंको

मोहताज है नदियां बारिश की
ये ऋतु चक्र में ही नहाती है
शेष दिनों गति में बोझ ढोती जाती
नदियों का नहाना बारिश का इंतजार है
वेग, संबल सब है तुम्हारे अंदर
तुम नहीं मोहताज किसी के
चौतन्य बनो, हुंकार करो
नदी का नहाना किसी ने देखा है

शंभू कांत सिन्हा, मो0 : 9470467893

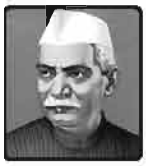

भोपाल में हुए अष्टम अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा - प्रचार-सम्मेलन के वार्षिक-उत्सव में राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का उद्घाटन-भाषण यहाँ अविकल रूप में दिया जाता है।

राष्ट्रभाषा की समस्याएँ

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

हिन्दी, बहुतेरे अहिन्दी भाषी व्यक्तियों की जिनका हिन्दी साहित्य की, समृद्धि में बड़ा मूल्यवान योगदान है, ऋणी है और कोई कारण नहीं कि भविष्य में भी ऐसे लोग क्यों न हों। हिन्दी को केवल हिन्दी-भाषियों की बपौती ही नहीं माना जा सकता। यह एक सामान्य अनुभव है कि एक व्यक्ति जब मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा को सीखने का यत्न करता है तो वह उसका बेहतर और अधिक सावधानी से अध्ययन करता है और वह उस भाषा में उस भाषा के बोलने वाले लोगों से भी अधिक प्रवीण हो जाता है। आज भी दक्षिण भारत में ऐसे लोग हैं, जो मेरे आदमी से अधिक सुन्दर, परिमार्जित और मुहावरेदार हिन्दी बोल और लिख सकते हैं।

जब इस उत्सव में भाग लेने का निमंत्रण मुझे मिला और बाद में डॉ० काठजू ने भी इसे स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया तो मैंने इस सम्मेलन का उद्घाटन करना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

आरम्भ में ही मैं यह कहना चाहता हूँ कि यद्यपि हमारे संविधान में यह व्यवस्था की गई है, और वह भी सर्व-सम्मति से कि भारतीय गणराज्य की भाषा देवनागरी लिपि में हिंदी होगी। इसके लिए यह शर्त रखी गई है कि यह कार्य एक सुविचारित क्रम के अनुसार होगा और यह क्रम हर पाँच वर्ष के बाद नियुक्त किये गये आयुक्तों की सिफारिशों पर और संसद की विशेष समिति की रिपोर्ट के आधार पर किये गये सरकार के निर्णय के अनुसार होगा। यह आशा की गई है कि इस व्यवस्था को 15 वर्ष की अवधि में कार्यरूप दिया जा सकेगा। इसके लिए भी उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा संबंधी कुछ शर्तें रखी गई है। राज्यों की सरकारों के बारे में यह कहा गया है कि वे अपनी विधानसभा के निर्णय के अनुसार प्रादेशिक भाषाओं या हिन्दी का प्रयोग करेंगीं।

इसलिए यह स्पष्ट है कि ऐसी कोई भी धारणा कि हिन्दी केन्द्रीय सरकार पर अथवा राज्यों की सरकारों पर लादी जा रही है, एकदम निराधार होगी। संविधान का अभिप्राय केवल इतना है कि संघ की अधिकृत रूप में अंग्रेजी की जगह हिन्दी को देने के बारे में जितनी कार्यवाही की जाय, वह सुगम और सुविधाजनक तथा प्रादेशिक भाषाओं और हितों की प्रतिनिधित्व युक्त संसद की समिति के परामर्श के अनुकूल हो। जो पहिला भाषा आयोग नियुक्त हुआ था उसने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है और अभी यह कहना संभव नहीं कि इसकी अन्तिम सिफारिशें जो सरकार के निर्णय का आधार होंगीं, क्या होंगी क्योंकि वे अभी विचाराधीन हैं। इसलिए ऐसी आशंका किसी को नहीं होनी चाहिए, और मैं कह सकता हूँ कि न ऐसा किसी का विचार ही है कि हिंदी को किसी पर लादा जाय। जब कभी हिंदी को अंग्रेजी का स्थान दिया जायेगा, और ऐसा करने के लिए जो क्रमिक कार्यवाही की जायेगी, इसके बारे में समय और कार्य दोनों ही का निर्णय भारतीय संसद करेगी। अन्य कार्यों की तरह इस मामले में भी संसद ही देश के कानून और राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने के लिए सर्वोपरि अधिकारपूर्ण संस्था है।

अब इस प्रश्न के पक्ष और विपक्ष के संबंध में विस्तार से कुछ कहना आवश्यक है। पहिले तो यह जान लेना चाहिए कि राज्यों में हिन्दी और अंग्रेजी के बीच नहीं, बल्कि अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाओं के बीच प्रतिस्पर्द्धा है। मैं नहीं जानता यदि किसी ने ऐसा प्रस्ताव भी रखा है कि प्रादेशिक भाषाओं के स्थान पर राज्यों में सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी ही बनी रहनी चाहिए। यह एक ऐसा सुझाव है, जो मैं समझता हूँ, न युक्तिसंगत है और न व्यक्त किये जाने योग्य।

हिन्दी के विरुद्ध आलोचकों को सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यह भाषा इतनी समृद्ध नहीं कि इससे आजकल की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। यह एक ऐसी आपत्ति है जो कम या अधिक सभी भारतीय भाषाओं पर लागू हो सकती है। इसका कारण सरल और आसानी से समझ में आ सकता है। इन भाषाओं को अभी तक इन जरूरतों को पूरा करने का अवसर नहीं मिला। जिन विषयों में और जिन क्षेत्रों में हिन्दी तथा दूसरी भाषाएँ कमजोर पड़ती है वे सभी ऐसे हैं जो अभी तक हिन्दी या दूसरी भाषाओं के माध्यम से हमारे स्कूलों या कॉलेजों में नही पढ़ाये गये। हमारे शिक्षकों और अध्यापकों ने कभी इन्हें नहीं पढ़ाया और न ही इनके सम्बन्ध में अपने विचार हिन्दी अथवा दूसरी भाषाओं में व्यक्त करने का उन्हें अवसर मिला। ज्ञानोपार्जन की दिशा में उन्होंने जो कुछ अभी तक किया है वह अंग्रेजी के माध्यम से ही किया और स्वभावत: हमारी भाषाओं का इतना विकास नहीं हुआ, जितना होना चाहिए था। जब कभी भी हमारी भाषाओं को कुछ कर दिखाने का अवसर मिला, जैसे दर्शन-शास्त्र की व्याख्या आदि का, वे कसौटी पर पूरी उतरीं। अच्छे और महान् लेखकों के हाथों में हमारी भाषाओं ने पूर्ण सफलता प्राप्त की, जो बहुतों की उत्सुकता और प्रशंसा प्राप्त कर सकी।

मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि अवसर मिलने पर हमारी भाषाएँ वांछित स्तर तक

विकसित हो सकेंगी। क्या कोई यह कह सकता है कि संसार की किसी भी भाषा में विज्ञान-सम्बन्धी विषयों के लिए बनी बनाई या सहज शब्दावली उपलब्ध थी? क्या यह सच नहीं है कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी की उन्नति के साथ-साथ संसार की सभी भाषाओं में नये शब्द गढ़े गये हैं? तब, क्या कोई कारण है कि यदि एक बार हम अपनी भाषाओं को आधुनिक एवं वैज्ञानिक एवं विचारधारा को अभिव्यक्त करने का भार सौंप दें तो भारत में भी ऐसा ही क्यों न हो? हमारे विज्ञानवेत्ता आवश्यकतानुसार नये शब्द गढ़ सकेंगे, और इस काम में उन्हें संस्कृत से विशेष सहायता मिलेगी। जरूरत केवल इस बात की है कि वे भारतीय भाषाओं में, जिनमें हिन्दी भी शामिल है, एक बार लिखना आरम्भ करें। जैसा कि मैंने कहा उपयुक्त वैज्ञानिक शब्दावली का सभी भारतीय भाषाओं में अभाव है। मेरा यह विश्वास है कि संस्कृत की सहायता से हम सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य वैज्ञानिक शब्दावली तैयार कर सकते हैं। भारत-सरकार द्वारा इस

हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए हिन्दी-भाषियों को संकुचित वृत्ति नहीं रखनी चाहिए, अपितु उदार दृष्टि से काम लेना चाहिए और अहिन्दी-भाषियों की हिन्दी-शैली यदि थोड़ी बहुत भिन्न हो तो इसके कारण उनके प्रति चिढ़ने के बजाय, हिन्दी भाषा के शब्द-भंडार को बढ़ाने में और नये शब्द, नये मुहावरे, नयी शैली और कुछ हद तक भाषा के व्याकरण परिवर्तन में भी उनका सहयोग मानना तथा लेना चाहिए।

दिशा में पारिभाषिक शब्दकोष तैयार करने का जो प्रयास किया जा रहा है, वह असाधारण रूप से सफल रहा है। सम्भव है कुछ नये शब्द एकदम नवीन या विचित्र भी दिखाई दें, किन्तु यह प्रयास उचित और प्रशंसनीय है। मुझे आशा है ये शब्द ज्यों-ज्यों व्यवहार में आएँगें , भाषा में सुधार होता जाएगा और इस प्रकार वह समृद्ध भी होती जायेगी। सभी देशों में सभी भाषाओं को इस प्रकार की स्थिति से होकर गुजरना पड़ता है। कोई कारण नहीं कि हमारा भी यही अनुभव क्यों न हो। जहाँ एक बार यह प्रक्रिया आरम्भ हुई हम भाषा-सम्बन्धी सबसे बड़ी कठिनाई पर पार पा लेंगे और हमारे मार्ग में कोई रुकावट न रहेगी। सरकारी कामकाज की और प्रशासन सम्बन्धी शब्दावली तैयार करना इतना कठिन नहीं और निस्सन्देह इस क्षेत्र में भारतीय भाषाएँ विज्ञान और टेक्नोलॉजी की अपेक्षा पहिले ही सफलता प्राप्त कर लेंगी।

मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि अंग्रेजी जैसी उपयोगी भाषा का पठन-पाठन हमारे स्कूलों में बंद कर दिया जाय। अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के क्षेत्र भिन्न है। इसलिए जब हमारी भाषाएँ राज्यों में उचित स्थान ग्रहण कर लेंगी। इनमें और अंग्रेजी में किसी प्रकार के संघर्ष की गुंजाइश नहीं रहेगी। हम अपने लोगों को अंग्रेजी पढ़ने से रोकना नहीं चाहते, यही नहीं, बल्कि हम

चाहते हैं कि हमारे देशवासी अंग्रेजी को उसी तत्परता से पढ़ें जैसे अन्य देशों में किसी भी महत्त्वपूर्ण विदेशी भाषा का अध्ययन किया जाता है।

यदि मैं यह कहूँ कि जो हिन्दी विरोधी भावना हम आज देख रहे हैं उसका कारण बहुत हद तक हमारा अपना अनुचित उत्साह है। मुझे आशा है हिन्दी के प्रसार और इसकी उन्नति में दिलचस्पी रखने वाले भाई मुझे गलत नहीं समझेंगे। राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने के लिए प्रचार और प्रसार की जिम्मेदारी हिन्दी-भाषा-भाषियों पर नहीं आती है। यह कार्य अहिन्दी-भाषी लोगों की सद्भावना और समर्थन से किया जाना चाहिए। अहिन्दी भाषी भाईयों को हमें यह विश्वास दिलाना चाहिए कि हिन्दी को अपनाने से उनके किसी भी हित को हानि नहीं पहुँचेगी और भारत के सरकारी कामकाज के लिए हिन्दी का प्रयोग हमारी राष्ट्र-भक्ति की भावना और राष्ट्रीयता की मांग है। मेरा अपना यह विश्वास है कि अहिन्दी क्षेत्रों में इस धारणा की जड़ पकड़ने में बहुत समय नहीं लगेगा। इस बीच में हिन्दी के सभी प्रेमियों का यह कर्त्तव्य है कि भाषा को उन्नत करने के महत्त्वपूर्ण और रचनात्मक कार्य में वे हाथ बटाएँ, इसकी शब्दावली और इसके साहित्य को आकर्षक बनाएँ।

हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए हिन्दी-भाषियों को संकुचित वृत्ति नहीं रखनी चाहिए, अपितु उदार दृष्टि से काम लेना चाहिए और अहिन्दी-भाषियों की हिन्दी-शैली यदि थोड़ी बहुत भिन्न हो तो इसके कारण उनके प्रति चिढ़ने के बजाय, हिन्दी भाषा के शब्द-भंडार को बढ़ाने में और नये शब्द, नये मुहावरे, नयी शैली और कुछ हद तक भाषा के व्याकरण परिवर्तन में भी उनका सहयोग मानना तथा लेना चाहिए। परिणामतः यह संभव है कि इसके कारण किंचित् विभिन्नता लिये हुए विभिन्न शैलियों का उदय हो जाय और वास्तव में देखा जाय तो आज भी किसी हद तक उनका अस्तित्व है ही, लेकिन हमें इस विभिन्नता को सहना ही नहीं, बल्कि इसका स्वागत करना चाहिए। यदि हम केवल इंग्लैंड और अमेरिका के उदाहरण ही लें तो जो कुछ मैंने कहा है उसकी पर्याप्त पुष्टि हो सकती है। यद्यपि अंग्रेजी दोनों देशों की भाषा है, किन्तु दोनों देशों में जो भाषा प्रयोग की जाती है उसके रूप में बहुत-सी बातों में अन्तर है। पर इस कारण से दोनों देशों की भाषा अलग नहीं समझी जाती और न ही अंग्रेजी के अलावा कोई दूसरा नाम ही उसे दिया गया है। यदि किसी लेखक या प्रदेश में भाषा, शब्दावली और मुहावरों में कोई भिन्नता या विशेष शैली झलकती है तो उसे हमको भाषा का ह्रास न समझकर उसे भाषा की उन्नति की निशानी समझना चाहिए। हम केवल हिन्दी भाषा को ही लेकर सोचें तो हम देख सकते हैं कि प्रेम सागर और प्रेमचंद की भाषा और शैली में कितना अन्तर है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शैली और वर्तमान हिन्दी-कवियों तथा लेखकों की भाषा-शैली में भी अन्तर है। इसलिये यदि एक महाराष्ट्रीय या बंगाली कुछ विभिन्न शैली में लिखता है तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस पर उसकी अपनी भाषा की शैली, शब्दावली और मुहावरे इत्यादि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस

सीमित उद्देश्य के लिए हिन्दी का प्रचार वांछनीय है, उसकी पूर्ति के लिए इसी रूप से अहिन्दी-भाषियों में हिन्दी प्रचलित और स्वीकृत हो सकती है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि अपने-अपने क्षेत्र में ही सर्व भारतीय भाषाओं को उन्नत और विकसित होना है और उनके विकास में सहायता देने के लिए हम वचन-बद्ध हैं और यह हमारा कर्त्तव्य भी है। इस प्रकार इन सब भाषाओं के विकास के लिए विस्तृत क्षेत्र है और जब यह विकसित हो जाएँगी, हिन्दी को उनसे समुचित यथोचित लाभ उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरा विश्वास है कि केवल भौतिक समृद्धि में ही नहीं, बल्कि भारत की भाषाओं के सम्बन्ध में भी यह बात सत्य है कि एक की उन्नति और विकास का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रह सका।

यदि हम इस शताब्दी के आरम्भ काल की ओर दृष्टिपात करें तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि बंगीय साहित्य का हिन्दी साहित्य के विकास पर कितना असर पड़ा है। हिन्दी, बहुतेरे अहिन्दी भाषी व्यक्तियों की जिनका हिन्दी साहित्य की, समृद्धि में बड़ा मूल्यवान योगदान है, ऋणी है और कोई कारण नहीं कि भविष्य में भी ऐसे लोग क्यों न हों। हिन्दी को केवल हिन्दी-भाषियों की बपौती ही नहीं माना जा सकता। यह एक सामान्य अनुभव है कि एक व्यक्ति जब मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा को सीखने का यत्न करता है तो वह उसका बेहतर और अधिक सावधानी से अध्ययन करता है और वह उस भाषा में उस भाषा के बोलने वाले लोगों से भी अधिक प्रवीण हो जाता है। आज भी दक्षिण भारत में ऐसे लोग हैं, जो मेरे आदमी से अधिक सुन्दर, परिमार्जित और मुहावरेदार हिन्दी बोल और लिख सकते हैं। मेरी यह धारणा है कि जिस गति से हिन्दी का प्रसार हो रहा है और जिस गति से हिन्दी का प्रचार हो रहा है और जिस लगन व उत्साह से कतिपय अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में उसका अध्ययन किया जा रहा है, वे केवल हिन्दी भाषियों को चकित ही नहीं करेंगे, बल्कि बहुत स्थानों में उनकी जगह भी ले लेंगे। अंग्रेज और अन्य विदेशी लोग भारतीयों के अंग्रेजी भाषा में बोलने और लिखने की सुन्दर शैली और प्रवाह से चकित हो जाते हैं। यह अनुभव हिन्दी के सम्बन्ध में भी होना अवश्यंभावी है। जब कभी यह दिन आएगा, वह एक उल्लास का दिन होगा और तब तक हिन्दी के प्रति कोई विरोध नहीं रह जायेगा, बल्कि सभी प्रांतों में खुशी के साथ लोग सार्वदेशिक कार्यों के लिए हिन्दी का उपयोग करने लग जाएँगें। हिन्दी भाषियों का यह कर्त्तव्य है कि वे लगनपूर्वक हिन्दी की ऐसी सेवा करें कि वह सभी अहिन्दी-भाषियों के द्वारा मान्य हो जाय और सभी प्रकार के आधुनिक भावों को व्यक्त करने के लिए वह योग्य माध्यम बन जाय और उसका साहित्य इतना समृद्ध हो जाय कि वह दूसरों को आकर्षित कर सके। दूसरे लोगों के प्रेम पर हमें भरोसा रखना चाहिए और उन पर यह छोड़ देना चाहिए कि किस गति से और किस तरीके से संविधान को कार्यान्वित किया जाय।

दिल्ली विश्वविद्यालय के खॉलसा कॉलेज में आयोजित नवागत समारोह में साहित्य यात्रा पर चर्चा

डॉ. अमरेन्द्र पाण्डेय

श्री गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज के हिन्दी साहित्य सभा द्वारा प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी दिनांक 24/10/2017 को नवागत समारोह का आयोजन किया गया। इस आयोजन की प्रभारी डॉ. वीना अग्रवाल थी, जिनकी देखरेख में इसका आयोजन किया गया। इस उत्सव को आयोजित करने के पीछे का कारण होता है कि प्रत्येक वर्ष जो नए विद्यार्थी आते हैं वह कॉलेज की कार्यप्रणाली से परिचित हों तथा उसमें सांस्कृतिक विकास हो। इसी मकसद से इस तरह के कार्यक्रमों का आयोजन होता है।

इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि रहीं कॉलेज के ही एसोसिएट प्रोफेसर एवं मीडिया विशेषज्ञ डॉ. स्मिता मिश्रा। जिन्होंने कार्यक्रम की बागडोर संभाली और अपने सम्बोधन में मूल्यपरक, समय का ध्यान और तात्कालिक जवाबदेही पर बल दिया और साथ ही उन्होंने यह कहा की इन कर्तव्यों के विकास पर इन नवागतों को काम करना चाहिए, जिससे की उनका जीवन उज्ज्वल हो। डॉ. असद इतिहास के ज्ञाता हैं उन्होंने अपने ऐतिहासिक रंग को अपनाते हुए वर्तमान के कुछ तथ्यों पर सभी छात्र-छात्राओं का ध्यान आकर्शित किया। उन्होंने हाल ही में जाट आंदोलन और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि का उल्लेख किया व सभी को जाट की उत्पत्ति तथा उसकी सीमाओं से परिचित कराया। विद्वत् परिशद के सदस्य और राजनीति शास्त्र के प्राध्यापक डॉ. नचिकेता सिंह ने भी कार्यक्रम में शिरकत की

और उन्होंने बड़ी आत्मीयता के साथ नव-विद्यार्थियों का स्वागत किया व प्रेरणादायक शब्दों से अभिभूत किया। कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए नववर्ष के विद्यार्थियों ने अपने नृत्य गान व काव्य की प्रस्तुति दी। इस कार्यक्रम की खास उपलब्धि जो रही वह थी, साहित्य यात्रा का विमोचन ।

इस पत्रिका की चर्चा करते हुए डॉ. स्मिता मिश्रा ने इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया कि यह पत्रिका शोध जर्नल के रूप में प्रकाशित हो रही है और शोध परख आलेखों को प्रकाशित कर रही है। यह इस पत्रिका कि विशेषता भी है जो इसे अन्य पत्रिकाओं से विशिष्ट बनाती है। तत्पश्चात नवागत समारोह में विजेता घोषित किए गए प्रतिभागी विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया गया। इस कार्यक्रम में कॉलेज के विभिन्न विभागों के प्राध्यापक डॉ. नचिकेता सिंह, डॉ. असद, डॉ. अमरेन्द्र पाण्डेय, डॉ. संजय पाण्डेय और वरिष्ठ छात्र आशीष, संजीत, पूजा, साल्वी, सिमरन आदि लोगों ने मुख्य भूमिका निभाई। इस सफल कार्यक्रम का संचालन बी.ए. तृतीय वर्ष के छात्र रवि शंकर सिंह ने किया। अन्त में हिन्दी साहित्य सभा के अध्यक्ष दीपक रावत ने कार्यक्रम में आए हुए सभी अतिथियों का आभार प्रकट किया।

पत्रिका की चर्चा करते हुए डॉ. स्मिता मिश्रा ने इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया कि यह पत्रिका शोध जर्नल के रूप में प्रकाशित हो रही है और शोध परख आलेखों को प्रकाशित कर रही है। यह इस पत्रिका कि विशेषता भी है जो इसे अन्य पत्रिकाओं से विशिष्ट बनाती है। तत्पश्चात नवागत समारोह में विजेता घोषित किए गए प्रतिभागी विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया गया।

डॉ. अमरेन्द्र पाण्डेय, प्राध्यापक, श्री गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज